साहित्य
सहय

भौम काढा

साहित्य-सञ्चय

[हिन्दी-गद्य-पद्य का प्रतिनिधि सङ्कलन]

सम्पादक

श्री ओंप्रकाश बी० ए०

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद नई दिल्ली

वक्तव्य

स्वतन्त्र भारत के नव-निर्माण में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रमुख हाथ है। अतः यह आवश्यक है कि देश की तरुण पीढ़ी उस भाषा के साहित्य तथा काव्य का ज्ञान यथेष्ट रूप से प्राप्त करे।

इस पुस्तक का संकलन इसी व्यापक दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर किया गया है। हमने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया है कि हिन्दी-साहित्य की प्रत्येक गति-विधि से सम्बन्धित प्रारम्भिक ज्ञान छात्रों को इस एक ही पुस्तक द्वारा हो जाय।

इसमें जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले लेख, कहानी, संस्मरण तथा कविताएँ ही हमने गुम्फित की हैं। साथ ही इस बात को भी हमने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया कि इसके पाठ समाज की गति-विधि पर व्यंग्य करके छात्रों में एक नवीन प्रेरणा तथा जागृति उत्पन्न करने वाले हों।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि इसके पाठों से नई पीढ़ी के छात्र भावी समाज तथा उसके उद्धारक साहित्य के उत्थान की भावना अपने मन में अवश्य संजोयेंगे। आशा है इस स्वप्न को साकार करने में हमारा प्रयास पूर्णतया सफल होगा।

अन्त में हम उन सब लेखकों तथा कवियों के प्रति विनम्र भाव से कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पावन कर्तव्य समझते हैं, जिनकी उत्कृष्ट कृतियों का सञ्चय 'साहित्य-सञ्चय' में किया गया है।

—सम्पादक

क्रम

गद्य खण्ड

पद्य खण्ड

प्राचीन

अर्वाचीन

गद्य खण्ड

: १ :

गांधीजी से भेंट

(डॉ० राजेन्द्रप्रसाद)

१९१६ में लखनऊ की कांग्रेस बड़े समारोह के साथ हुई थी। १९०७ में जब कांग्रेस में दो दल हो गए, और गरम पार्टी कांग्रेस से अलग हो गई, तब से कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो गई थी। उसके सालाना जलसों में भी कम लोग आया करते थे, यहाँ तक कि १९१२ में जब पटना में कांग्रेस हुई, प्रतिनिधियों की संख्या बहुत कम थी। देश-हितैषियों की कोशिश थी कि दोनों दल मिला दिए जायँ जिससे कांग्रेस में फिर से जान आ जाय। यह प्रयत्न चलता रहा, पर यह सफल हुआ १९१६ की कांग्रेस में ही। इसमें सभी विचार के लोग उपस्थित थे। एक तरफ लोकमान्य तिलक दल-बल के साथ आये थे, दूसरी ओर नरम दल के प्रायः सभी नेता उपस्थित थे। मिसेज़ बेसेण्ट भी आई थीं। उसी साल मुस्लिम लीग के साथ समझौता भी हुआ। मुसलमान भी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। महात्मा गांधी भी इस कांग्रेस में आये थे। वह १९१५ में ही दक्षिण अफ्रीका से लौटकर सारे देश में भ्रमण करते रहे, पर इस कांग्रेस में वह किसी प्रस्ताव पर बोले नहीं।

बिहार के भी प्रतिनिधि अच्छी संख्या में लखनऊ पहुँचे थे। उनमें कुछ लोग चम्पारन के थे, जिनमें एक देहाती किसान राजकुमार शुक्ल थे। वह थोड़ी हिन्दी जानते थे, पर और कोई भाषा नहीं। वह उन

लोगों में थे जिन्होंने खुद नीलवर (निलहे) गोरों के हाथ से दुख पाया था। चम्पारन ज़िले की सताई हुई प्रजा की ओर से वह कांग्रेस में पहुँचे थे। उनसे मेरी मुलाकात कुछ पहले से ही थी, क्योंकि जब-कभी कोई मुकदमा हाईकोर्ट तक पहुँच पाता था तो मैं फीस का खयाल न करके उन लोगों के वकील की हैसियत से काम कर दिया करता था। पर इस काम में बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद उन लोगों की बहुत मदद किया करते थे। इसलिए उन लोगों का विशेष परिचय उन्हीं से था। चम्पारन जिले की परिस्थिति से वह बहुत ज्यादा परिचित थे।

उस समय बिहार के प्रतिनिधि दो विषयों में विशेष दिलचस्पी रखते थे और कांग्रेस में उन पर प्रस्ताव पास कराना चाहते थे—एक पटना यूनिवर्सिटी बिल और दूसरा चम्पारन का नीलवर-प्रश्न। राजकुमार शुक्ल, बाबू ब्रजकिशोर प्रभृति बहुत चाहते थे कि कांग्रेस इस सवाल पर भी प्रस्ताव करे। बिहार प्रान्तीय कान्फ्रेंस के सभापति की हैसियत से बाबू ब्रजकिशोर इस प्रश्न पर कड़ी आलोचना कर चुके थे। उस कान्फ्रेंस में एक प्रस्ताव भी पास हो चुका था। कौंसिल के वह मेम्बर थे। उन्होंने वहाँ भी इस समस्या पर प्रश्न पूछे थे और एक प्रस्ताव भी रखा था। कौंसिल में और बाहर भी, एक प्रकार से इस विषय को अपना लक्ष्य बनाकर, विधान के अन्दर इस पर जो काम हो सकता था, वह कर रहे थे। जहाँ तक हो सकता था, मुकदमों में भी वहाँ की रिआया की मदद करते थे।

यह बात बिहार के लोगों को मालूम थी कि कर्मवीर गांधी दक्षिण-अफ्रीका में बहुत-कुछ करके हिन्दुस्तान आये हैं, इसलिए उनसे इस काम में मदद लेनी चाहिए। राजकुमार शुक्ल आदि उनसे मिले और चम्पारन का कुल हाल कह सुनाया। उन्होंने कुछ दिलचस्पी ज़ाहिर की। इधर से कहा गया कि कांग्रेस में वह एक प्रस्ताव उपस्थित करें। उन्होंने इन्कार कर दिया—कहा कि जब तक वहाँ की स्थिति वह स्वयं देखकर और जाँचकर अपने को सन्तुष्ट नहीं कर लेंगे, प्रस्ताव उपस्थित नहीं

कर सकते। जोर देने पर उन्होंने कहा कि वहाँ जाकर स्थिति देखने के लिए वह तैयार हैं और कुछ दिनों के बाद वहाँ जायँगे भी। कांग्रेस में प्रस्ताव बाबू ब्रजकिशोर ने उपस्थित किया। राजकुमार शुक्ल भी उस पर कुछ बोले। यह शायद पहला ही मौका था जब एक निरा देहाती किसान कांग्रेस के मंच से किसी प्रस्ताव पर बोला हो। कांग्रेस ने प्रस्ताव स्वीकृत किया।

जब बिहार के प्रतिनिधि बाबू ब्रजकिशोर के साथ गांधीजी के पास गये थे तब मैं उनके साथ नहीं था। यह किस्सा मैंने पीछे सुना। मैं गांधीजी के बारे में बहुत जानकारी नहीं रखता था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो कुछ किया था उसकी जानकारी भी बहुत थोड़ी रखता था। केवल इतना ही जानता था कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में कोई बड़ा और अच्छा काम किया है। यह नहीं जानता था कि वह देश के नामी नेताओं की तरह एक बड़े नेता हैं। राजकुमार शुक्ल ने न मालूम क्यों उन पर इतना विश्वास किया और उनके पास पहुँचकर उनको चम्पारन आने के लिए राजी किया।

लखनऊ कांग्रेस के कुछ दिनों बाद गांधीजी कलकत्ता आये। उन्होंने राजकुमार शुक्ल को पत्र लिखा कि कलकत्ता में मुझको मिलो, वहाँ से हम दोनों साथ ही चम्पारन चलेंगे। देहात में पत्र देर करके पहुँचा। राजकुमार शुक्ल के पास पत्र पहुँचने के पहले ही गांधीजी कलकत्ता से वापस चल दिए थे। राजकुमार शुक्ल ने फिर पत्र लिखा। गांधीजी ने उत्तर दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कलकत्ता में होगी, वह उस बैठक में उपस्थित होंगे, राजकुमार शुक्ल को वहीं उनसे भेंट करनी चाहिए। मैं भी उस बैठक में उपस्थित था। इत्तिफाक से मैं गांधीजी की बगल में ही एक कुरसी पर बैठा था। पर मुझे यह मालूम नहीं था कि राजकुमार शुक्ल से उनका पत्र-व्यवहार हुआ है और वह वहाँ से बिहार आने वाले हैं। अपनी आदत से मजबूर मैं किसी से जबरदस्ती या आगे बढ़कर जान-पहचान करना नहीं जानता। मैंने गांधीजी से न

कुछ पूछा, और न एक शब्द भी मैं बोला। उस कमेटी में लोगों ने, और विशेष करके प्रेसिडेण्ट श्री अम्बिकाचरण मजुमदार ने, बहुत जोर दिया कि गांधीजी कांग्रेस के मन्त्री हो जायँ। पर गांधीजी ने इन्कार कर दिया। मैं बैठा-बैठा सब देखता रहा। कभी-कभी मैं यह सोचता था कि जब लोगों का इतना आग्रह है तो उनका इन्कार करना मुनासिब नहीं है। पर मैं कुछ बोल नहीं सकता था।

कमेटी का काम खत्म होने पर गांधीजी बाहर निकले। राजकुमार शुक्ल उनका इन्तजार कर रहे थे। उसी रात को वह राजकुमार शुक्ल के साथ सीधे पटना चले आए। मैं कुछ देर करके बाहर आया, इसलिए उन लोगों से मुलाकात नहीं हुई। गांधीजी भी नहीं जानते थे कि मैं बिहार का ही रहने वाला हूँ और राजकुमार शुक्ल पटना में मेरे ही घर पर उनको ले जाने वाले हैं। इसलिए वह भी मुझसे कुछ नहीं बोले।

यह बैठक ईस्टर की छुट्टियों में हुई थी। मैं कलकत्ता से जगन्नाथ-पुरी चला गया। गांधीजी पटना आ गए। राजकुमार शुक्ल उनको मेरे घर पर ले गए, पर वहाँ एक नौकर के सिवाय और कोई था ही नहीं। नौकर ने समझा कि ये कोई देहाती मुवक्किल आये हैं, इसलिए उसने उनको किसी बाहर के कमरे में ठहरा दिया और किसी किस्म का आदर-सत्कार करने के बदले कुछ तिरस्कार का ही भाव दिखलाया। गांधीजी कुछ देर ठहरे। इतने में मजहरुलहक साहब को खबर हुई। वह खुद आकर उनको अपने घर पर ले गए। सन्ध्या को गांधीजी मुजफ्फरपुर पहुँचे। वहाँ आचार्य कृपलानी के पास ठहरे। वहाँ कुछ लोगों से भेंट-मुलाकात करके उनका इरादा था कि चम्पारन जायँ। बाबू ब्रजकिशोर, जो दरभंगा में वकालत किया करते थे, तार देकर बुला लिये गए थे।

गांधीजी का इरादा था कि वह चम्पारन में जाकर वहाँ के रैयतों से मिलें और उनका दुःख उन्हीं के मुँह से सुनें। पर वहाँ की ग्रामीण बोली वह समझ नहीं सकते थे, इसलिए वह चाहते थे कि कोई दुभाषिये का काम करने के लिए उनके साथ जाय। उनका विचार था कि दो-चार

दिनों में सब बातें मालूम हो जायँगी। राजकुमार शुक्ल ने भी ऐसा ही कहा था। इसलिए वह दो-चार दिनों के लिए ही तैयार होकर आये थे। बाबू ब्रजकिशोर को ठीक उसी वक्त कलकत्ता में कुछ काम था। वह खुद गांधीजी के साथ न जा सके। पर उन्होंने दो मित्रों को गांधीजी के साथ कर दिया, जो वकील थे। उन्होंने यह भी सोच लिया कि कलकत्ता से लौटने पर वह खुद चम्पारन जायँगे और जरूरत होगी तो मुझे भी साथ ले जायँगे।

चम्पारन जिले का सदर शहर मोतीहारी है। गांधीजी वहाँ पहुँचे। पहुँचने के बाद उन्होंने देहात में जाने का इरादा कर लिया। एक गाँव से एक प्रतिष्ठित रैयत आये, जिनका घर दो-चार ही दिन पहले नीलवरों की ओर से लूट लिया गया था। उस लूट-खसोट के निशान अभी तक मौजूद थे। उन्होंने आकर सारा किस्सा कहा। गांधीजी वहीं जाना चाहते थे। रास्ते में ही कलक्टर का हुक्म पहुँचा कि आप जिला छोड़कर चले जाइए। उन्होंने जिला छोड़ने से इन्कार कर दिया। वह हुक्म-उदूली के मुकदमे का इन्तजार करने लगे। उसी दिन यह भी मालूम हो गया कि मुकदमा चलेगा। मैं उसी दिन पुरी से पटना लौटा था। कचहरी में मेरे पास ये सारी बातें उन्होंने तार द्वारा लिख भेजीं।

यह पहला ही अवसर था जब गांधीजी से मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क हुआ। मैंने कलकत्ता तार देकर बाबू ब्रजकिशोर को बुला लिया। दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से मिस्टर मजहरुलहक और मिस्टर पोलक, जो उस समय हिन्दुस्तान में ही थे, उसी रात को गांधीजी का तार पाकर, पटना पहुँच गए थे। बाबू ब्रजकिशोर, अनुग्रह नारायण और शम्भूशरण के साथ मैं मोतीहारी के लिए रवाना हो गया। हम लोग दिन में तीन बजे के करीब वहाँ पहुँचे। उस समय तक मामला अदालत में पेश हो चुका था, बल्कि सुनवाई के बाद हुक्म के लिए तीन-चार दिनों के वास्ते मुलतवी कर दिया गया था।

बाबू गोरखप्रसाद के मकान पर गांधीजी ठहरे थे। हम लोग जब

वहाँ पहुँचे तो गांधीजी एक कुरता पहने हुए बैठे थे। हम लोगों से उनका परिचय पहले से नहीं था। जब परिचय कराया गया तो मुझसे हँसते हुए उन्होंने कहा—"आप आ गए ? आपके घर तो मैं गया था।" मैंने कुछ किस्सा तो सुन लिया था, इसलिए कुछ शर्मिन्दा भी हुआ। उन्होंने जो कुछ कचहरी में हुआ था, सब कह सुनाया।

'चम्पारन में महात्मा गांधी' नामक पुस्तक में, जो उस आन्दोलन के सफलतापूर्वक समाप्त होने के थोड़े ही दिनों बाद लिखी और प्रकाशित की गई थी, मैंने चम्पारन का सारा किस्सा विस्तारपूर्वक दे दिया है। यहाँ केवल अपने सम्बन्ध का ही जिक्र करना चाहता हूँ।

गांधीजी को पहले-पहल देखकर मेरे ऊपर कोई खास असर नहीं पड़ा। मैं चम्पारन का हाल थोड़ा-बहुत जानता था, पर अधिकतर बाबू ब्रजकिशोर की आज्ञा मानने के लिए ही शुरू में वहाँ गया था। सोचा था, जो कुछ काम होगा वह कर दिया जायगा। स्वप्न में भी यह मन में नहीं आया था कि वहाँ पहुँचते ही जेल जाने का जटिल प्रश्न हमारे सामने आएगा।

गांधीजी ने सब बातें कहकर हमसे कहा कि अपने साथी बाबू धरनीधर और बाबू रामनौमी से और सब बातें सुन लीजिए। इतना कहकर वे मि० पोलक से बातें करने लगे। हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से विस्तारपूर्वक सारा हाल सुना। मालूम हुआ कि गांधीजी प्रायः रात-भर जागकर वायसराय तथा नेताओं के पास भेजने के लिए पत्र लिखते रहे हैं और कचहरी के लिए अपना बयान भी उन्होंने रात में ही तैयार कर लिया था। उन दोनों से, जो दुभाषिये का काम करने के लिए ही आये थे, गांधीजी ने पूछा था कि 'मेरे कैद हो जाने के बाद आप लोग क्या करेंगे ?' वे लोग प्रश्न की गूढ़ता को शायद पूरा समझ न सके थे। बाबू धरनीधर ने मज़ाक में कह दिया था कि 'आपके (गांधीजी के) कैद हो जाने के बाद दुभाषिये का काम नहीं रह जायगा; हम लोग अपने-अपने घर चले जायँगे।' यह सुनकर गांधीजी ने प्रश्न किया—'और इस

काम को ऐसे ही छोड़ देंगे ?' इस पर उन लोगों को कुछ सोचना पड़ा। बाबू धरनीधर ने, जो बड़े थे, उत्तर दिया कि वह जाँच का काम जारी रखेंगे, और जब उन पर भी सरकार की ओर से नोटिस हो जायगा, तो वह चूँकि जेल जाने के लिए तैयार नहीं हैं, खुद तो छोड़ जायँगे और किसी दूसरे वकील को भेजेंगे, जो जाँच का काम करेंगे। और अगर उन पर भी नोटिस हुए, तो वह भी चले जायँगे और उनके पीछे तीसरी टोली आएगी। इस प्रकार काम जारी रखा जायगा।

यह सुनकर गांधीजी को कुछ सन्तोष हुआ, पर पूरा नहीं। उन लोगों को भी सन्तोष न हुआ। वे लोग रात को सोचते रहे कि 'यह आदमी न मालूम कहाँ से आकर यहाँ के रैयतों के कष्ट दूर करने के लिए जेल जा रहा है और हम लोग, जो यहाँ के रहने वाले होकर रैयतों की मदद का दम भरा करते हैं, इस तरह घर चले जायँ, यह अच्छा नहीं मालूम होता।'

पर जेल की बात अभी हममें से किसी ने कभी सोची ही न थी। जेल तो एक भयंकर जगह समझी जाती थी, जहाँ से गिरफ्तारी के बाद भी बचने के लिए लोग हजारों खर्च करके जमानत पर छुट्टी लिया करते थे। अगर कोई मजबूरी से जेल गया भी तो वहाँ रुपये खर्च करके आराम पाने का प्रबन्ध करता था। और यहाँ यह आदमी जो दक्षिण अफ्रीका में इतना काम कर आया है, इन अनजान किसानों की खातिर सब कष्ट सहने के लिए तैयार है। ऐसी दशा में भी हम घर चले जायँ, यह कैसे हो सकता है? इधर बाल-बच्चों की भी फिक्र थी।

रात-भर सोच-विचार करने के बाद, दूसरे दिन सवेरे, जब गांधीजी के साथ ये लोग कचहरी जा रहे थे, इनकी भावनाएँ उमड़ पड़ीं। इन्होंने साफ-साफ कह दिया, 'आपके जेल जाने के बाद अगर जरूरत पड़ी तो हम लोग भी जेल जायँगे।'

यह सुनते ही गांधीजी का चेहरा खिल उठा। वह बहुत ही खुश होकर बोल उठे—'अब मामला फतह हो जायगा।'

वहाँ पहुँचते ही ये सारी बातें हम लोगों ने उन दोनों भाइयों से सुनीं। अब तो हमारे भी सामने जेल जाने का प्रश्न आ गया। हम लोगों ने तय कर लिया कि जरूरत पड़ने पर हम भी जेल जायँगे। यह निश्चय गांधीजी को हमने सुना दिया। उन्होंने काग़ज़-कलम लेकर सबके नाम लिख लिये। हम लोगों को कई टोलियों में उन्होंने बाँट दिया। यह भी तय कर दिया कि ये टोलियाँ किस क्रम से जेल जायँगी। पहली टोली के सरदार मजहरुलहक साहब थे, दूसरी के बाबू ब्रजकिशोर। एक टोली का सरदार मैं भी बनाया गया। ये सारी बातें वहाँ पहुँचने के तीन-चार घण्टों के अन्दर ही तय हो गई।

मुकदमे में तीन या चार दिनों के बाद हुक्म सुनाया जाने को था। उस दिन गांधीजी जेल जाने वाले थे। मजहरुलहक साहब के हाथ में कोई मुकदमा गोरखपुर में था। वह वहाँ चले गए, ताकि मामला खत्म करके उस दिन के पहले ही वापस आकर नेतृत्व करें।

बाबू ब्रजकिशोर भी अपने घर का प्रबन्ध करने के लिए दरभंगा चले गए। हम लोग मोतीहारी में ही ठहरकर किसानों के बयान सुनने और लिखने लगे। विचार था कि जब ये दोनों सज्जन वापस आ जायँगे तब हम लोग भी एक-एक करके घर जायँगे और घर के लोगों से मिल-जुल-कर जेल-यात्रा की तैयारी करके लौट आएँगे।

गांधीजी ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि इससे वह सन्तुष्ट हुए थे, और उसी दिन से बिहार के प्रति उनका बहुत प्रेम हो गया और हम लोग उनके विश्वास-पात्र बन गए।

चम्पारन की जाँच शुरू हो गई। हजारों की तादाद में किसानों ने बयान लिखवाए; शायद २०-२५ हजार बयान हम लोगों ने लिखे हों। तारीख के पहले ही मजिस्ट्रेट ने लिख भेजा कि सरकार के हुक्म से गांधीजी पर से मुकदमा उठा लिया गया और उनको जिले में जाँच करने की इजाजत दे दी गई। जाँच से पता चला कि जो कुछ जुल्म हमने सुने थे, वहाँ की परिस्थिति उससे कहीं अधिक बुरी थी।

इस तरह पहली मुलाकात में ही हम लोग अपनी इच्छा से गांधीजी के फाँस में फँस गए। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उनके साथ केवल प्रेम ही नहीं बढ़ा, उनकी कार्य-पद्धति पर विश्वास भी बढ़ता गया। चम्पारन का काण्ड समाप्त होते-होते हम सब-के-सब उनके अनन्य भक्त और उनकी कार्य-प्रणाली के पक्के हामी बन चुके थे।

: २ :

बचपन की झाँकी

(पण्डित जवाहरलाल नेहरू)

मेरा बचपन बड़ों की छत्रछाया में बीता और उसमें कोई महत्त्व की घटना नहीं हुई। मैं अपने चचेरे भाइयों की बातें सुनता, मगर हमेशा सब-की-सब मेरी समझ में आ जाती हों सो बात नहीं। अक्सर यह बात अंग्रेज और यूरेशियन लोगों के ऐंठू स्वभाव और हिन्दुस्तानियों के साथ अपमानजनक व्यवहारों के बारे में हुआ करती थीं और इस बात पर भी चर्चा हुआ करती थी कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी का फ़र्ज होना चाहिए कि वह इस हालत का मुकाबला करे और इसे हरगिज सहन न करे। हाकिमों और लोगों में टक्करें होती रहती थीं और उनके समाचार आये-दिन सुनाई पड़ते थे। उस पर भी खूब चर्चा होती थी। यह एक आम बात थी कि जब कोई अंग्रेज किसी हिन्दुस्तानी को कत्ल कर देता, तो अंग्रेजों के जूरी उसे बरी कर देते। यह बात सबको खटकती थी। रेलगाड़ियों में यूरोपियनों के लिए डिब्बे रिजर्व रहते थे और गाड़ी में चाहे कितनी भीड़ हो, और प्राय: भीड़ रहा ही करती थी, कोई हिन्दुस्तानी उनमें सफ़र

नहीं कर सकता था, भले ही वे खाली पड़े रहें। जो डिब्बे रिज़र्व नहीं होते थे, उन पर भी अंग्रेज़ लोग अपना कब्ज़ा जमा लेते थे और किसी हिन्दुस्तानी को घुसने नहीं देते थे। सार्वजनिक बग़ीचों और दूसरी जगहों में भी बेंचें और कुरसियाँ रिज़र्व रखी जाती थीं। विदेशी हाकिमों के इस बरताव को देखकर मुझे बड़ा रंज होता और जब कभी कोई हिन्दुस्तानी उलटकर वार कर देता तो मुझे बड़ी खुशी होती। कभी-कभी मेरे चचेरे भाइयों में से कोई या उनके कोई दोस्त खुद भी ऐसे झगड़ों में उलझ जाते, तब हम लोगों में बड़ा जोश फैल जाता। हमारे परिवार में मेरे चचेरे भाई बड़े दबंग थे। उन्हें अक्सर अंग्रेज़ों से और ज्यादातर यूरेशियनों से झगड़ा मोल लेने का बड़ा शौक था। यूरेशियन तो अपने को शासकों की जाति का बताने के लिए अंग्रेज़ अफ़सरों और व्यापारियों से भी ज्यादा बुरी तरह पेश आते थे। ऐसे झगड़े खासकर रेल के सफ़र में हुआ करते थे।

हालाँकि देश में विदेशी शासकों का रहना और उनका रंग-ढंग मुझे असह्य मालूम होने लगा था, तो भी, जहाँ तक मुझे याद है, किसी अंग्रेज़ के लिए मेरे दिल में बुरा भाव न था। मेरी अध्यापिकाएँ अंग्रेज़ थीं और कभी-कभी मैं देखता था कि कुछ अंग्रेज़ भी पिताजी से मिलने के लिए आया करते थे। बल्कि यों कहना चाहिए कि अपने दिल में तो मैं अंग्रेज़ों की इज्ज़त ही करता था।

शाम को रोज़ कई मित्र पिताजी से मिलने आया करते थे। पिताजी आराम से पड़ जाते और उनके बीच दिन-भर की थकान मिटाते। उनकी ज़बरदस्त हँसी से सारा घर भर जाता था। इलाहाबाद में उनकी हँसी एक मशहूर बात हो गई थी। कभी-कभी मैं परदे की ओट से उनकी और उनके दोस्तों की ओर झाँकता और यह जानने की कोशिश करता कि ये बड़े लोग इकट्ठे होकर आपस में क्या-क्या बातें किया करते हैं। मगर जब कभी ऐसा करते हुए मैं पकड़ा जाता, तो खींचकर बाहर लाया जाता और सहमा हुआ कुछ देर तक पिताजी की गोद में बैठाया जाता।

हिन्दू पुराणों और रामायण, महाभारत की कथाएँ भी मैं सुना करता था। मेरी माँ और चाचियाँ सुनाया करती थीं। मेरी एक चाची, पं० नन्दलालजी की विधवा पत्नी, पुराने हिन्दू-ग्रन्थों की बहुत जानकारी रखती थीं, उनके पास इन कहानियों का तो मानो खजाना ही भरा था। इस कारण हिन्दू पौराणिक कथाओं और गाथाओं की मुझे काफी जानकारी हो गई थी।

धर्म के मामले में मेरे विचार बहुत धुँधले थे। मुझे वह स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाला विषय मालूम होता था। पिताजी और बड़े चचेरे भाई धर्म की बात को हँसी में उड़ा दिया करते थे और इसको कोई महत्त्व नहीं देते थे। हाँ, हमारे घर की औरतें अलबत्ता पूजा-पाठ और व्रत-त्योहार किया करती थीं। हालाँकि मैं इस मामले में घर से बड़े-बूढ़े आदमियों की देखा-देखी उनकी अवहेलना किया करता था, फिर भी कहना होगा कि मुझे उनमें एक लुत्फ़ आता था। कभी-कभी मैं अपनी माँ या चाची के साथ गंगा नहाने जाया करता और कभी इलाहाबाद या काशी या दूसरी जगह के मन्दिरों में भी या किसी नामी और बड़े साधु-संन्यासी के दर्शन के लिए भी जाया करता, मगर इन सबका बहुत कम असर मेरे दिल पर हुआ।

फिर त्योहार के दिन आते थे······होली जब कि सारे शहर में रंग-रेलियों की धूम मच जाती थी और हम लोग एक-दूसरे पर रंग की पिचकारियाँ चलाते थे; दिवाली रोशनी का त्योहार होता, जब कि सब घरों पर धीमी रोशनी वाले हज़ारों दिये जलाये जाते; जन्माष्टमी, जिसमें जेल में जन्मे श्रीकृष्ण की आधी रात को वर्षगाँठ मनाई जाती, लेकिन उस समय तक जागते रहना हमारे लिए बड़ा मुश्किल होता था; दशहरा और रामलीला, जिसमें स्वाँग और जुलूसों के द्वारा रामचन्द्र और लंका-विजय की पुरानी कहानी की नक़ल की जाती थी और जिन्हें देखने के लिए बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी होती थी। सब बच्चे मुहर्रम का जुलूस भी देखने जाते थे, जिसमें रेशमी अमल होते थे और सुदूर अरब में हसन

ग्रौर हुसैन के साथ हुई घटनाग्रों की यादगार में शोकपूर्ण मर्सिए गाये जाते थे। दोनों ईद पर मुन्शीजी बढ़िया कपड़े पहनकर बड़ी मस्जिद में नमाज़ के लिए जाते ग्रौर मैं उनके घर जाकर मीठी सेवैयाँ ग्रौर दूसरी बढ़िया चीज़ें खाया करता। इनके सिवा रक्षाबन्धन, भैया-दूज वगैरह छोटे त्योहार भी हम लोग मनाते थे।

काश्मीरियों के कुछ ख़ास त्योहार भी होते हैं, जिन्हें उत्तर में बहुतेरे दूसरे हिन्दू नहीं मानते। इनमें सबसे बड़ा नौरोज़ याने वर्ष प्रतिपदा का त्योहार है। इस दिन हम लोग नये कपड़े पहनकर बन-ठनकर निकलते। घर के बड़े लड़के-लड़कियों को हाथ-खर्च के तौर पर कुछ पैसे भी मिला करते थे।

मगर इन तमाम उत्सवों में मुझे एक सालाना जलसे में ज्यादा दिलचस्पी रहती, जिसका ख़ास मुझसे ही सम्बन्ध था, ग्रर्थात् मेरी वर्षगाँठ का उत्सव। इस दिन मैं बड़े उत्साह ग्रौर रङ्ग में रहता था। सुबह ही एक बड़ी तराज़ू में मैं गेहूँ ग्रौर दूसरी चीज़ों के थैलों से तोला जाता ग्रौर फिर वे चीजें ग़रीबों को बाँट दी जातीं ग्रौर बाद को नये-नये कपड़ों से सजा-धजाकर मुझे भेंट ग्रौर तोहफे नजर किये जाते। फिर शाम को दावत दी जाती। उस दिन का मानो मैं राजा हो जाता, मगर मुझे इस बात का बड़ा दुःख होता था कि वर्षगाँठ साल में एक बार ही क्यों ग्राती है। ग्रौर मैंने इस बात का ग्रान्दोलन-सा खड़ा करने की कोशिश की कि वर्षगाँठ के मौके बरस में एक बार ही क्यों ग्रौर ग्रधिक क्यों न ग्राया करें? उस वक्त मुझे क्या पता था कि एक समय ऐसा भी ग्राएगा जब ये वर्षगाँठें हमको ग्रपने बुढ़ापे के ग्राने की दुखदायी याद दिलाया करेंगी।

इस तरह मेरा बचपन गुज़रा।

: ३ :

यही मेरी मातृभूमि है

(श्री प्रेमचन्द)

: १ :

आज पूरे ६० वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि, प्यारी मातृभूमि, के दर्शन प्राप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था, और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नसों में नवीन रक्त संचालित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष से किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान हाथों ने नहीं जुदा किया था। अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएँ मुझसे जो चाहे करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकतीं। वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश-निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जाकर वहाँ खूब व्यापार किया, और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धन से आनन्द भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली, जो गुणों में अपना सानी आप ही थी। उसके हृदय में ऐसे विचार की गुञ्जाइश भी न थी, जिसका सम्बन्ध मुझसे न हो। मैं उस पर तन-मन से आसक्त था, और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पाँच पुत्र थे, जो सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हे-नन्हे पौत्र गोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अन्तिम दर्शन करने को पैर उठाए। मैंने अनन्त धन, प्रियतमा पत्नी, सपूत बेटे और प्यारे-प्यारे जिगर के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिए परित्याग कर दिए कि प्यारी भारत-जननी के अन्तिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत

बूढ़ा हो गया हूँ; दस वर्ष बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाकी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रज-कण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उस समय भी थी, जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों से मेरे हृदय को प्रफुल्लित किया करती थी, और जबकि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आकर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते, उस समय भी मेरे हृदय में एक काँटा-सा खटकता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है, और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे, और जायदाद थी; मगर न मालूम क्यों, मुझे रह-रहकर मातृभूमि के टूटे-फूटे झोंपड़े, चार-छः बीघे मौरूसी जमीन और बालपन के लँगोटिए यारों की याद अक्सर सता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनन्दोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि "यदि मैं अपने देश में होता........।"

: २ :

जिस समय मैं बम्बई में जहाज से उतरा, मैंने पहले काले-काले कोट पतलून पहने, टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अंग्रेजी दुकानें, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं। इसके बाद रबर-टायर वाली गाड़ियों और मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियों से मुठभेड़ हुई। फिर रेल का विक्टोरिया-टर्मिनस-स्टेशन देखा। बाद में मैं रेल पर सवार होकर हरी-भरी पहाड़ियों के मध्य स्थित अपने गाँव को चल दिया। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आए, और मैं खूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था, जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इंग्लैण्ड था मगर प्यारा भारत नहीं।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानों को पार करती हुई

मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ग को मात कर रहा था। मैं जब गाड़ी से उतरा, तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था। अब अपना प्यारा घर देखूँगा—अपने बालपन के प्यारे साथियों से मिलूँगा। मैं इस समय बिलकुल भूल गया था कि मैं ९० वर्ष का बूढ़ा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट आता था, मेरे पग तेज होते जाते थे, और हृदय में अकथनीय आनन्द का खेल उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँख फाड़-फाड़कर दृष्टि डालता। आह! यह वही नाला है, जिसमें हम रोज घोड़े नहलाते थे और स्वयं भी डुबकियाँ लगाते थे, किन्तु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे, और एक बंगला था, जिसमें दो अंग्रेज बन्दूकें लिये इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सख्त मनाही थी।

गाँव में गया, और निगाहें बालपन के साथियों को खोजने लगीं; किन्तु शोक! वे सब-के-सब मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। मेरा घर—टूटा-फूटा झोंपड़ा—जिसकी गोद में मैं बरसों खेला था, जहाँ बचपन और बेफिक्री के आनन्द लूटे थे, और जिनका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया।

: ३ :

यह स्थान गैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-फिरते नज़र आते थे, जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिस की बातें कर रहे थे। उनके मुखों से चिन्ता, निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी। सब सांसारिक चिन्ताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियों के समान हृष्ट-पुष्ट, बलवान, लाल चेहरे वाले नवयुवक कहीं न दीख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर, जिसकी जड़ मेरे हाथों ने डाली थी, अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल, कान्तिहीन, रोगियों की-सी सूरत वाले बालक फटे कपड़े पहने बैठे ऊँघ रहे थे। उनको देखकर सहसा मेरे मुख

से निकल पड़ा—"नहीं-नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने में इतनी दूर से नहीं आया हूँ—यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।"

बरगद के पेड़ की ओर दौड़ा, जिसकी सुहावनी छाया में मैंने बचपन के आनन्द उड़ाए थे, जो हमारे छुटपन का क्रीड़ा-स्थल और युवावस्था का सुखप्रद कुञ्ज था। आह! इस प्यारे बरगद को देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा, और दिल में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ऐसी-ऐसी दुःखदायक तथा हृदय-विदारक स्मृतियाँ ताज़ी हो गईं कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू बहाता रहा। हा! यही बरगद है, जिसकी डालों पर चढ़कर मैं फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारा झूला थीं, और जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों से अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे। मेरे गले में बाँहें डालकर खेलने वाले लँगोटिया यार, जो कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गये? हाय! मैं बिना घर-बार का मुसाफिर अब क्या अकेला ही हूँ? क्या मेरा कोई भी साथी नहीं? इस बरगद के निकट अब थाना था, और बरगद के नीचे कोई लाल साफा बाँधे बैठा था। इसके आसपास दस-बीस लाल पगड़ी वाले आदमी करबद्ध खड़े थे। वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने एक दुर्भिक्ष-ग्रस्त पुरुष, जिस पर अभी चाबुकों की बौछार हुई थी, पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश नहीं है, यह कोई और देश है। यह यूरोप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है—कदापि नहीं।

इधर से निराश होकर मैं उस चौपाल की ओर चला, जहाँ शाम के वक्त पिताजी गाँव के अन्य बुज़ुर्गों के साथ हुक्का पीते और हँसी-कहकहे उड़ाते थे। हम भी उस टाट के बिछौने पर कलाबाज़ियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचायत भी बैठती थी, जिसके सरपंच सदा पिताजी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव-भर की गाएँ रखी जाती थीं, और बछड़ों के साथ हम यहीं किल्लोलें किया करते थे। शोक! अब उस चौपाल का पता तक न था। यहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल से लगा एक कोल्हूवाड़ा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईख पेरी जाती थी और गुड़ की सुगन्ध से चित्त प्रसन्न हो जाता था। हम और हमारे साथी गँडेरियों के लिए वहाँ बैठे रहते और गँडेरियाँ कतरने वाले मजदूरों के हस्त-लाघव को देखकर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिलाकर पिया था। आसपास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े लेकर वहाँ आते थे और उसमें रस भरकर ले जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे, किन्तु कोल्हूवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटने वाली मशीन लगी थी और उसके सामने तम्बोली और सिगरेट वाले की दुकान थी। इन हृदय-विदारक दृश्यों को देखकर मैंने एक आदमी से, जो देखने में सभ्य मालूम होता था, पूछा—"महाशय, मैं एक परदेसी आदमी हूँ, रात-भर लेटे रहने की मुझे आज्ञा दीजिएगा ?" इस आदमी ने मुझे सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा, और बोला—"आगे जाओ, यहाँ जगह नहीं है।" मैं आगे गया और वहाँ भी यही उत्तर मिला। पाँचवीं बार एक सज्जन से स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्ठी चने मेरे हाथ पर रख दिए। चने मेरे हाथ से छूट पड़े और नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा—"हाय ! यह मेरा देश नहीं है, यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारी प्यारा भारत नहीं है—कदापि नहीं है।"

मैंने एक पान का बीड़ा खरीदा और एक सुनसान जगह पर बैठकर पान चबाते हुए पूर्व समय की याद करने लगा। अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया, जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी। मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वहीं काट लूँ, मगर शोक ! शोक !! महान् शोक !!!! धर्मशाला ज्यों-की-त्यों खड़ी थी, किन्तु उसमें गरीब यात्रियों के टिकने के लिए स्थान न था। मदिरा, दुराचार और जुए ने उसे अपना घर बना रखा था। यह दशा देखकर विवशतः मेरे हृदय से एक सर्द आह निकल पड़ी और मैं ज़ोर से चिल्ला उठा—"नहीं, नहीं,

और हजार बार नहीं है—यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह यूरोप है, अमेरिका है, मगर भारत कदापि नहीं है।"

: ४ :

अँधेरी रात थी। गीदड़ और कुत्ते अपने कर्कश स्वर में गीत गा रहे थे। मैं अपना दुःखित हृदय लेकर उसी नाले के किनारे जाकर बैठ गया और सोचने लगा—अब क्या करूँ? क्या फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ और अपना यह शरीर अमेरिका की मिट्टी में मिलाऊँ? अब तक मेरी मातृभूमि थी; मैं विदेश में जरूर था, किन्तु मुझे अपने प्यारे देश की याद बनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रखे मौन बठा रहा। रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की। सहसा घण्टे वाले ने तीन बजाए और किसी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया। यह तो देश का ही राग है; यह तो मातृभूमि का ही स्वर है। मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ, क्या देखता हूँ कि पन्द्रह-बीस वृद्धा स्त्रियाँ, सफेद धोतियाँ पहने, हाथों में लोटे लिये स्नान को जा रही हैं और गाती जाती हैं:

प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो!

मैं इस गीत को सुनकर तन्मय हो ही रहा था कि इतने में मुझे बहुत से आदमियों का बोल-चाल का शब्द सुनाई पड़ा। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतल के कमंडलु लिये हुए शिव-शिव, हर-हर, गंगे-गंगे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। मधुर, भावमय और प्रभावोत्पादक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिका की रमणियों का अलाप सुना था, सहस्रों बार उनकी जिह्वा से प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे, उनके हृदयाकर्षक वचनों का आनन्द उठाया था, मैंने सुरीले पक्षियों का चहचहाना भी सुना था, किन्तु जो आनन्द, जो मज़ा, जो सुख मुझे इस राग में आया, वह मुझे

जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने खुद गुनगुनाकर गाया :

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो !

मेरे हृदय में फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बातें हैं। आनन्दातिरेक से मेरा हृदय आनन्दमय हो गया। मैं भी इन आदमियों के साथ हो लिया और छः मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतित-पावनी है, जिसकी लहरों में डुबकी लगाना और जिसकी गोद में मरना प्रत्येक हिन्दू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गङ्गा मेरे प्यारे गाँव से छः-सात मील पर बहती थी। किसी समय मैं घोड़े पर चढ़कर नित्य स्नान करने जाता था। गङ्गा माता के दर्शनों की लालसा मेरे हृदय में सदा रहती थी। यहाँ मैंने हजारों मनुष्यों को इस ठण्डे पानी में डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालू पर बैठे गायत्री-मन्त्र जप रहे थे, कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे, कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे, और कुछ लोग सस्वर वेद-मन्त्र पढ़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ, और मैं जोर से कह उठा—"हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृभूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है, और इसी के दर्शनों की मेरी उत्कट इच्छा थी। इसी की पवित्र धूलि का कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है।"

: ५ :

मैं विशेष आनन्द में मग्न था। मैंने अपना पुराना कोट और पतलून उतारकर फेंक दिया, और गङ्गा माता की गोद में जा गिरा, जैसे कोई भोला-भाला बालक दिन-भर निर्दय लोगों के साथ रहने के बाद सन्ध्या को अपनी प्यारी माता की गोद में दौड़कर चला आए और उसकी छाती से चिपट जाय। हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गङ्गा मेरी माता है।

मैंने ठीक गङ्गा के किनारे एक छोटी-सी कुटी बनवा ली है। अब

मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है। मैं नित्य प्रातः-काल गङ्गा-स्नान करता हूँ, और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण निकलें और मेरी अस्थियाँ गङ्गा माता की लहरों की भेंट हों।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गङ्गा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता। मैं अपनी मिट्टी गङ्गाजी को ही सौंपूँगा। अब संसार यह मेरा प्यारा देश और यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। बस मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राणों का विसर्जन करूँ।

: ४ :

अध्ययन

(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

यदि हम चाहते हैं कि कोई ऐसा चस्का लगे जो प्रत्येक दशा में हमारा सहारा हो और जीवन में हमें आनन्द और प्रसन्नता प्रदान करे, उसकी बुराइयों से हमें बचाए, चाहे हमारे दिन कितने ही बुरे हों और सारा संसार हम से रूठा हो, तो हमें चाहिए कि हम पढ़ने का चस्का लगाएँ। अध्ययन की रुचि से जो लाभ हैं, वे इतने ही नहीं हैं। जिन उद्देश्यों के साधन के लिए अध्ययन किया जाता है वे इतने ही नहीं हैं, इनसे अधिक हैं और इनसे उच्च भी हैं। आत्म-संस्कार-सम्बन्धी पुस्तक में अध्ययन को केवल एक रुचि की ही बात कह देना ठीक नहीं, उसे परम कर्त्तव्य निश्चित करना चाहिए, क्योंकि ज्ञान की वृद्धि और बड़े धर्म के अभ्यास का अध्ययन एक प्रधान साधन है।
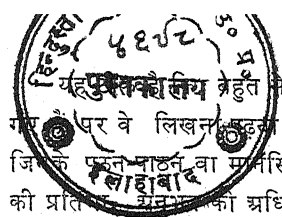
यह [illegible] बहुत से ऐसे कर्मण्य पुरुष हुए हैं जो बड़े काम कर गए हैं पर वे लिखना पढ़ना न जानते थे। बहुत से लोग हो गए हैं, जिनके पठन-पाठन वा मानसिक शिक्षा के अभाव की पूर्ति उनकी प्रज्ञा की प्रतिभा, [illegible] की अधिकता और अन्वीक्षण के अभ्यास द्वारा हो गई थी। पर पहली बात सोचने की यह है कि यदि वे पढ़े-लिखे होते, उनकी जानकारी और अधिक होती तो सम्भव है वे और भी अधिक उत्तम कार्य कर सकते। दूसरी बात यह है कि स्वाध्याय और आचरण आदि के सम्बन्ध में जो नियम ठहराए जाते हैं वे ऐसे इक्के-दुक्के लोगों के लिए नहीं जिन्हें जन-साधारण से अधिक स्वाभाविक शक्तियाँ प्राप्त रहती हैं।

आत्म-संस्कार के विधान का स्वाध्याय एक प्रधान अंग है। हमारे लिए किसी जाति के उस साहित्य में प्रगति प्राप्त करने का और कोई द्वार नहीं, जिसमें उसके भाव और विचार व्यक्त रहते हैं तथा उसकी उन्नति के क्रम का लेखा रहता है। मनुष्य जाति के सुख और कल्याण के विषय में संसार के प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों ने जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उन्हें जानने का और कोई उपाय नहीं। जो मनुष्य पढ़ना नहीं जानता उसे भूत काल का कुछ ज्ञान नहीं। वह जो सोचता है, विचारता है, परीक्षा करता है, वह अपनी ही छोटी-सी पहुँच और अपने ही अल्प साधनों के अनुसार। उसे उस भण्डार का पता नहीं जो न जाने कितनी पीढ़ियों से संचित होता आया है।

एक प्रसिद्ध गणितज्ञ के विषय में कहा जाता है कि जब वह लड़का था और उसे पुस्तकों की जानकारी न थी तब उसने गणित की कुछ प्रक्रियाएँ निकालीं और उन्हें यह समझकर कागज पर लिख लिया कि मैंने बड़े भारी आविष्कार किये। कुछ दिनों के उपरान्त जब वह एक बड़े पुस्तकालय में गया तब उसे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि जिन्हें वह इतने दिनों से अपने आविष्कार समझे हुए था वे साधारण छात्रों को ज्ञात, पुरानी और पिष्टपेषित बातें हैं।

विद्या के प्रत्येक विभाग में यही दशा उसकी होती है जो पढ़ता नहीं। मनुष्य की अन्वेषणा और विचार-परम्परा ज्ञान की किस सीमा तक पहुँच चुकी है इसकी उसे खबर नहीं रहती। उसके लिए उसके पूर्व का काल अन्धकारमय है। न जाने कितने लोग हो गए, कैसे-कैसे विचार कर गए, पर उसे क्या? वह तो जो सामने देखता है वही जानता है और शिक्षा के अभाव के कारण वह अच्छी तरह से देख भी नहीं सकता। वह अपने ही फैलाए हुए अन्धकार में गिरता-पड़ता है, टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों में भटकता फिरता है, वह यह नहीं जानता कि मनुष्यों के श्रम से एक चौड़ा सीधा मार्ग तैयार हो चुका है।

यहाँ हम पढ़ने के दो-एक अत्यन्त प्रत्यक्ष लाभों की ओर ध्यान दिलाते हैं। यह विषय जैसा उपयुक्त है वैसा ही मनोरंजक भी है। पहली बात तो यह है कि पढ़ने से इतिहास और काव्य में हमारी गति होती है और भूतकाल की घटनाएँ हमारे हृदय में प्रत्यक्ष हो जाती हैं। इनके द्वारा हमें संसार के बड़े-बड़े राज्यों की उत्पत्ति, वृद्धि और पतन का पता चलता है।

पढ़ने से हमें विदित होता है कि किसी प्रकार मनुष्य जाति की सभ्यता का प्रवाह कभी कुछ दिनों के लिए रुकता, कभी पीछे हटता हुआ, कभी एक स्थान में बँधता, कभी दूसरे स्थान पर बदुरता हुआ, कभी कुछ दिनों के लिए उथला और छिछला पड़कर फिर अनिवार्य वेग के साथ बढ़ता, गम्भीर होता हुआ अखण्ड हो, अन्ततः आगे ही बढ़ता आया है और उसने अपनी सुख-समृद्धि रूप विजय का प्रसार किया।

हम जानते हैं कि किस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओं को सहकर, कितने ही दिनों तक भयानक कष्टों और आपत्तियों को झेलकर, जनता ने क्रमशः अपनी उन्नति की है, जिसका फल यह हुआ है कि प्रत्येक सभ्य देश के गरीब आदमी अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक सुख-चैन से हैं। हम जानते हैं कि किस प्रकार संसार की अनेक क्रूर और धर्म-भाव-शून्य जातियाँ बौद्ध-धर्म ग्रहण करने को तैयार हुईं, किस प्रकार बौद्ध-धर्म का

प्रभाव और प्रचार बढ़ा तथा उससे मनुष्यों के रहन-सहन में कितना शुभ परिवर्तन हुआ।

पुस्तकों में हम देखते हैं कि किस प्रकार प्रताप और शक्ति एक जाति से निकलकर दूसरी जाति में जाती है, उनसे यह भी पता लगता है कि किन-किन कारणों से और किन-किन दशाओं में ऐसा होता है। भारतवर्ष पारस, काबुल, मिस्र, यूनान, रोम जो अब नाम-ही-नाम को रह गए हैं, कल्पना में जिनके प्रताप और महत्त्व की धुँधली छाया-मात्र शेष रह गई है, पुस्तकों के द्वारा वे हमें अपने यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं और हम उनकी यथार्थ स्थिति को समझने में समर्थ होते हैं। इन प्राचीन देशों की ओर जब हम ध्यान देते हैं तब हम दिनों के फेर को सोचते हैं, भाग्य की चंचलता को सोचते हैं और व्यक्ति के जीवन-क्रम तथा एक जाति के भाग्य-क्रम के बीच जो विलक्षण समानता है उस पर विचार करते हैं।

एक धार्मिक उपदेशक कहता है कि "चाहे एक व्यक्ति को लो, चाहे एक जाति को, सबमें समृद्धि के दिन प्रायः वे ही होते हैं जिनके पीछे घोर विपत्ति के दिन आते हैं।" चाहे चन्द्रगुप्त, सिकन्दर, खुसरो, तैमूर आदि बड़े-बड़े विजेताओं को लो, चाहे हस्तिनापुर, पाटलिपुत्र, एथेंस, रोम आदि की ओर ध्यान दो, बात एक ही होगी। अपनी रक्षा के निश्चय ही में नाश का अंकुर रहता है, अपने पराक्रम की भावना और उसे दिखाने की वासना ही से पतन भी होता है।

जो विद्याभ्यासी पुरुष पढ़ता है और पुस्तकों से प्रेम रखता है, संसार में उसकी स्थिति चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो उसे साथियों का अभाव नहीं खल सकता। उसकी कोठरी में सदा ऐसे लोगों का वास रहेगा जो अमर हैं। वे उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने और उसे समझाने के लिए सदा प्रस्तुत रहेंगे। कवि, दार्शनिक और विद्वान्, जिन्होंने अपने घोर प्रयत्नों के द्वारा प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करके शान्ति और सुख का तत्त्व निचोड़ा है, बड़े-बड़े महात्मा, जिन्होंने आत्मा के गूढ़ रहस्यों

की थाह लगाई है, सदा उसकी सुनने तथा उसकी शंकाओं का समाधान करने के लिए उद्यत रहेंगे ।

पढ़ते समय हमें विद्वान् और प्रतिभाशाली पुरुषों के मनोहर वाक्यों को, उनकी चमत्कारपूर्ण उक्तियों और विचारों को मन में संचित करते जाना चाहिए, जिसमें हमारे पास ज्ञान का एक ऐसा प्रचुर भाण्डार हो जाय कि उसमें से समय-समय पर जब जैसा अवसर पड़े हम शान्ति, उपदेश और उत्साह प्राप्त कर सकें । इस प्रकार का भाण्डार अधिकार में रखना उपयोगी और आनन्दप्रद दोनों हैं । बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब हमारा जी टूट जाता है और हमारी शान्ति शिथिल हो जाती है । सोचिए तो कि ऐसे अवसरों पर किसी ऐसे पुरुषार्थी महात्मा के उत्साहपूर्ण वचनों से कितना उत्साह प्राप्त होगा, जिसने कठिन संकट और विघ्न सहे, पर अन्त में अपने अध्यवसाय के बल से सिद्धि प्राप्त की । इस वचन से कितना उत्साह मिलता है :

छाँड़िए न हिम्मत बिसारिए न हरि-नाम,
जाही विधि राखे राम, वाही विधि रहिए ।

यह प्रयत्न में हताश या दुःखी व्यक्ति को कितना धैर्य बँधा सकता है । यदि उसे किसी ऐसे महात्मा के वचन सुनने को मिलें जो दुःख पड़ने पर कहता है—"ईश्वर चाहता है कि हम इस दशा में रहें, हम इस कर्तव्य को पूरा करें, हम इस व्याधि को भोगें, हम इस विपत्ति में पड़ें, हम यह अपमान और ताप सहें । ईश्वर की जैसी इच्छा ! ईश्वर की यही इच्छा है, हम या संसार चाहे जो कुछ कहें । उसकी इच्छा ही हमारे लिए परम धर्म है ।"

बहुत से अवसर आते हैं जब दूसरों की इच्छा के अनुसार कार्य करना, दूसरों की अधीनता स्वीकार करना, अभिमानी युवकों को बड़ा कड़वा जान पड़ता है । ऐसे अवसर पर यदि वे इस बात का स्मरण कर लें तो बहुत ही अच्छा हो, कि संसार में जितने बड़े-बड़े विजयी हुए हैं वे आज्ञा मानने में वैसे ही तत्पर थे जैसे आज्ञा देने में । बहुत से ऐसे

अवसर आते हैं जब सत्य के मार्ग पर स्थित रहने की उचित दृढ़ता हमें नहीं सूझती और हम चटपट आवेश में आकर काम करना चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर हमें गिरिधर कविराय की इस चेतावनी का स्मरण करना चाहिए :

बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो जग में होत हँसाय॥

अस्तु, पढ़ने का एक लाभ तो यह हुआ कि उससे हम समय पड़ने पर शिक्षा, उत्साह और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा हमें ऐसे अस्त्र प्राप्त होते हैं जिन्हें लेकर जीवन के भीषण संग्राम में हम अपनी थाप रख सकते हैं। उससे हमें उत्तम और उत्कृष्ट विचारों का आभास तथा उत्तम कार्यों की उत्तेजना मिलती है। एक बार किसी सरदार ने राजा की इच्छा के विरुद्ध कोई उचित और न्याय-संगत कार्य करने पर उद्यत एक दूसरे सरदार को परामर्श देते हुए कहा—"पर महाशय, राजाओं का क्रोध तो आप जानते हैं, मृत्यु सामने रखी है।" दूसरे सरदार ने चट उत्तर दिया—"तब मुझमें और आपमें केवल इतना ही अन्तर है कि मैं आज मरूँगा और आप कल।" इस 'अभिप्राय-गर्भित' वाक्य से किसका उत्साह नहीं बढ़ेगा, किसका चित्त दृढ़ न होगा?

कोई छोटा है या बड़ा, यह कोई बात नहीं; मुख्य बात यह है कि जो जिस श्रेणी में है उसके धर्म का पालन करता है या नहीं। साधारण विद्या-बुद्धि का मनुष्य भी यदि मर्यादा का ध्यान रखता हुआ धर्मपूर्वक अपना कार्य करता जाय तो वह उसी प्रकार सफल-मनोरथ हो सकता है जिस प्रकार कोई बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य। इस विषय पर मुझे बहुत कहने की आवश्यकता नहीं।

पढ़ने का बड़ा भारी अलभ्य और मनोहर लाभ यह है कि उससे चित्त शुभ भावनाओं और प्रौढ़ विचारों से पूर्ण हो जाता है। जब कभी जी चाहे मनुष्य चुपचाप बैठ जाय और जो कुछ उसने पढ़ा हो उसका

चिन्तन करता हुआ उपयोगी और आनन्दप्रद विचारों की धारा में मग्न हो जाय, इसके लिए उसे किसी प्रकार के बाहरी आधार की आवश्यकता नहीं।

खाली बैठे रहने के समय—जैसे रेल, नौका आदि की यात्रा में—हमारे लिए यह एक अच्छा लाभकारी मानसिक व्यायाम हुआ है कि हम किसी अच्छे ग्रन्थकार की कोई पुस्तक उठा लें और उसकी बातों, उसकी चमत्कारपूर्ण उक्तियों तथा उसके मनोहर दृष्टान्तों को हृदय में इस क्रम से धारण करते जायँ कि जब अवसर पड़े तब हम उन्हें उपस्थित कर सकें। हृदय का यह भण्डार ऐसा होगा जो कभी खाली न होगा, दिन-दिन बढ़ता जायगा। इस प्रकार हृदय में संचित किये हुए भाव और दृष्टान्त मोतियों के समान होंगे जिनकी आभा कभी नष्ट व क्षीण न होगी।

: ५ :

सत्याग्रही कभी हारता नहीं

(डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी)

महात्मा जी प्रायः कहा करते थे कि सत्याग्रही की हार कभी नहीं होती। सत्याग्रही हर हालत में केवल जीतता ही है। यह महात्मा जी का विश्वास नहीं था, उनके समूचे तत्त्व-ज्ञान का मेरुदण्ड था। वे भारत-वर्ष की विशाल सन्त-परम्परा के आखिरी किनारे के रत्न थे। बहुत सी बातों में उनकी तुलना पूर्ववर्ती सन्तों और ऋषियों से की जाती है, परन्तु एक बात में वे सबसे निराले थे। अपनी आध्यात्मिक साधना को उन्होंने वैयक्तिक साधना नहीं बनाया और न साधना को सिद्धि की अपेक्षा कम

महत्त्वपूर्ण समझा। अहिंसा और मैत्री उनके मत से केवल 'परमो धर्मः' नहीं थे, परम साधक भी थे। वे अकेले अपने-आपकी मुक्ति की चिन्ता से व्याकुल नहीं थे, समूचे देश को और समूची मनुष्य जाति को अपने साथ ले चलना चाहते थे। जो व्यक्ति अकेले ही कोई सिद्धि पाने की चेष्टा करता है वह एक बात से निश्चिन्त रहता है। वह इस बात की परवाह नहीं करता कि उसने जिस बात को सिद्धि-सोपान माना है उसे दूसरा उतनी ही दृढ़ता से सिद्धि-सोपान मानने को प्रस्तुत है या नहीं, परन्तु जिसे अपने साथ सहस्रों-लाखों को किसी बड़े लक्ष्य तक ले जाने का प्रयत्न करना पड़ता है उसकी समस्या जटिल होती है, उसे धैर्यपूर्वक दूसरों की शंकाओं की बात सुननी पड़ती है और उसके चित्त में सत्य तक पहुँचने के लिए विवेक और उत्साह जाग्रत करते रहना पड़ता है। महात्मा जी को प्रायः ऐसा ही करना पड़ता था। सबकी बुद्धि इतनी कुशाग्र नहीं होती कि हर बाधा को छेदकर तत्त्व तक पहुँच जाय, इसीलिए गुरु की आवश्यकता साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी गई है। जब महात्मा जी कहते थे कि सत्याग्रही की कभी हार होती ही नहीं, तो उनके वक्तव्य के लक्ष्य उनके आलोचक नहीं, उनके अनुयायी होते थे। महात्मा जी के इस वाक्य में जो सन्देश है वह उन लोगों के लिए है; जो अहिंसा और मैत्री के मार्ग से चलकर सम्पूर्ण मानव-समाज में अहिंसा और मैत्री का धर्म प्रतिष्ठित कराना चाहते हैं। उनकी साधना व्यक्तिगत साधना हो सकती है, पर उनका लक्ष्य व्यक्तिगत नहीं होता, वह सम्पूर्ण समाज को कल्याण के प्रति सचेष्ट करना चाहता है। वस्तुतः जब अहिंसा को साधक और साध्य दोनों कहा जाता है, तो उसका यही अर्थ हो सकता है कि मन, वचन और कर्म की व्यक्तिगत अहिंसा और मैत्री धर्म द्वारा समूची मनुष्य-जाति को इस महान् सत्य के प्रति उन्मुख और इसे उपलब्ध करने के लिए प्रयत्नशील बनाना है। व्यक्तिगत अहिंसा और मैत्री का धर्म साधन है, और उसकी सामूहिक रूप में उपलब्धि साध्य।

हार और जीत

हार और जीत है क्या वस्तु ? जब हम इन शब्दों का व्यवहार करते हैं, तो हमारे मन में किसी-न-किसी प्रकार की एक लड़ाई की कल्पना होती है । हम किसी प्रतिपक्ष को दबाकर जब अपने मनोनुकूल लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं तो उसे जीत कहते हैं और जब प्रतिपक्ष ही प्रबल होता है और हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने नहीं देता तब हम निराश होकर अपनी हार मान लेते हैं । साधारण मनुष्य अपने हर छोटे-मोटे प्रयत्नों में एक-न-एक प्रकार का संघर्ष देखता है । उसके प्रयत्नों का सबसे अन्तिम किनारा जीत या हार है, बाकी कर्म-प्रवाह संघर्ष है या प्रतिपक्ष को दबा देने की लड़ाई है । इसीलिए वह अपने प्रयत्नों की सफलता या असफलता के लिए चिन्तित होता रहता है । यदि वह चिन्तित न हो, तो उनका संघर्ष कमज़ोर पड़ सकता है और अवसर मिलते ही प्रतिपक्ष उसको दबा सकता है, लेकिन सब संघर्षों में यह बात नहीं होती । जहाँ साधन और साध्य में भेद होता है वहाँ तो यह समस्या बड़ी जटिल हो उठती है । प्रेम यदि चित्त में हो और प्रतिपक्ष को दबाना नहीं बल्कि उसे उठाना लक्ष्य हो, तो मनुष्य के मन में हार की बात आ ही नहीं सकती । नितान्त छोटी-छोटी बातों में भी इसकी परीक्षा की जा सकती है । पिता अपने छोटे बच्चे के साथ जब खेलता है, तो हारने को बुरा नहीं मानता । पुराने ज़माने से ही लोग 'पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्'—पुत्र और शिष्य से पराजय की ही कामना करनी चाहिए—यह मत गर्वपूर्वक मानते आ रहे हैं । क्योंकि वहाँ यद्यपि पुत्र के साथ एक प्रकार की प्रतिपक्ष भावना ही होती है, पर वह प्रतिपक्ष भावना लड़ाई नहीं होती । उसमें प्रतिपक्ष के प्रति प्रीति और उसे और बड़ा बनाने की भावना प्रबल होती है । इस 'संघर्ष' की हार हार नहीं होती, क्योंकि उसमें शुरू से अन्त तक प्रेम-ही-प्रेम होता है । एक पुराने कवि ने तरुण दम्पतियों की द्यूत-क्रीड़ा देखकर और उनकी हार-जीत की बाज़ी का अन्दाजा लगाकर कहा था—"लाभः स

यद्यपि जये च पराजये च, यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव ।" (अर्थात् यद्यपि इस लड़ाई में हारने में भी उतना ही लाभ है जितना जीतने में, तो भी इन तरुणों में से दोनों जीतना ही चाहते हैं ।) प्रेम की लड़ाई में हार और जीत केवल शब्द-मात्र हैं, जो वस्तुतः एकार्थक हैं या निरर्थक हैं । सत्याग्रही की लड़ाई प्रेम की लड़ाई होती है, इसीलिए उसमें हार और जीत का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । जिसे अपने कार्यों और आदर्शों में अखण्ड विश्वास न हो वह सत्याग्रही नहीं हो सकता और जो यह विश्वास लेकर ही अग्रसर हुआ है कि वह तथाकथित प्रतिज्ञा को और भी उन्नत, और भी कल्याणकारी बनाएगा, उसे हारने की आशंका कैसे हो सकती है ?

शत्रु से प्रेम

जो लोग महात्मा जी के इस प्रकार के अखण्ड विश्वास को नहीं समझ सकते थे उन्हें ही यह शंका होती थी कि महात्मा जी के अमुक कार्य से हार हो जाने की सम्भावना है । जो लोग उनके आलोचक थे उनके हृदय में यह बात आती ही नहीं थी कि शत्रु से भी प्रेम किया जा सकता है । महात्मा जी ने जब कहा था कि मैं तो अंग्रेजों की भलाई के लिए कहता हूँ कि वे इस देश को छोड़कर चले जायँ तो लोगों ने इसका परिहास किया था । एक बार एक सज्जन ने तो यहाँ तक कहा था कि यह महात्मा जी का सबसे बड़ा चकमा देने वाला वाक्य है । उनके कहने का मतलब यह था कि महात्मा जी ने ऐसा कहकर अपने प्रयत्नों को दुनिया की दृष्टि में ऊँचे स्तर पर ले जाने की चेष्टा की थी । इस प्रकार के विचार करने वालों को महात्मा जी की कोई भी बात समझ में नहीं आती थी, क्योंकि वे अपने सड़े हुए संस्कारों की सीमा से बाहर नहीं आ सकते थे । महात्मा जी ने किसी को अपना शत्रु नहीं समझा, उन्होंने सबको मित्र समझा । जो लोग गलती करते थे उन्हें भी वे अपना मित्र ही समझते थे, उनकी गलतियों को सुधारना वे अपना कर्तव्य मानते थे । उनके

आलोचक कभी इस बात को नहीं समझ सके, परन्तु केवल उनके आलोचक ही नहीं उनके अनुयायियों के मन में भी कभी-कभी यह शंका होती थी कि उनके प्रयत्नों की हार हो जाने की सम्भावना है। इन लोगों में प्रेम, धर्म उतनी मात्रा में नहीं होता था, जितनी कि आवश्यकता सत्याग्रही को होती है। उन्हीं के लिए महात्मा जी का यह उपदेश था—सत्यग्रही कभी नहीं हारता।

साधन की पवित्रता

जिसका साधन पवित्र होता है, जो मन से, वचन से और कर्म से पर-कल्याण की कामना करता है वह हार नहीं सकता क्योंकि शुरू से अन्त तक उसके साधन में और सिद्धि में कोई भेद नहीं होता। ऐसा हो सकता है कि जिस गलती को वह सुधारना चाहता है उसको एक बहुत बड़े समुदाय ने गलती न समझकर सत्य मान लिया हो और इस मान्यता के कारण वह गलती बहुत शक्तिशाली हो गई हो और सत्याग्रही अपने प्रयत्नों में सामयिक भाव से असफल हो जाय, पर इसे हार नहीं कह सकते। इस देश में अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है वह एक बड़ी गलती ही है पर लोगों ने उसे 'धर्म' मान लिया है। 'धर्म' वह है नहीं, परन्तु मनुष्य के चित्त का सहारा पाकर वह विश्वास शक्तिशाली अवश्य हो गया है। सत्याग्रही उन जातियों को नष्ट नहीं करना चाहता जो इस दुर्व्यवहार के लिए उत्तरदायी हैं, वह उन्हें बड़े भारी पाप से उबारना चाहता है। उसका उद्देश्य भी पवित्र होता है और वह रास्ता भी पवित्र ही चुनता है। उसे सफलता केवल लोक-प्रचलित अर्थ में ही मिलती है। वस्तुतः उसको सिद्धि प्रतिक्षण मिलती रहती है। प्रेम से बढ़कर और कौनसी सिद्धि है ? वह पग-पग पर उसी प्रेम की साधना करता रहता है। बहुत से लोग समझते हैं कि दूसरों को सुधारने की इच्छा एक दम्भमात्र है, मनुष्य वस्तुतः अपना ही सुधार कर सकता है। सत्याग्रही नित्य अपनी ही साधना से पवित्र होता रहता है,

जिस दिन उसके पवित्र होते रहने की साधना समाप्त हो जाय, वह अपने को परम सिद्ध मान ले, उसी दिन उसका विकास रुक जाता है। प्रेम बड़ी पावन वस्तु है। जिसे उसका संस्पर्श मिलता है वह पवित्र हो ही जाता है, परन्तु जिस दिन मन में आग्रह का भाव प्रेम के भाव से मजबूत हो जायगा उस दिन सत्याग्रही सत्याग्रही नहीं रह जाता।

दुर्भाग्यवश आज महात्मा जी के अनुयायियों में बुद्धि-भेद उत्पन्न हो गया है। हम आज हार-जीत की बोली बोलने लगे हैं। प्रेम का भाव कम हो गया है, आग्रह का भाव बढ़ गया है। छोटी-छोटी बातों में यह बात प्रकट होने लगी है। महात्मा जी के जन्म-दिन के पुण्य अवसर पर हमें दृढ़ता के साथ उनकी महान् प्रम-साधना की बात को स्मरण करना चाहिए। मनुष्य का कल्याण ही लक्ष्य है, मनुष्य के प्रति अखण्ड प्रेम ही मार्ग है और मनुष्य की महिमा में अखण्ड विश्वास ही सम्बल है। जिसके मन में ये बातें होंगी वह हार नहीं सकता। हारता वह है, जिसके मन में प्रेम नहीं होता, विश्वास नहीं होता। जो हारता नहीं, वह डरता भी नहीं। महात्मा जी के देश में कम-से-कम भय को तो कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। फिर भी दुर्भाग्यवश भय ने भी हमारे देशवासियों को ग्रस लिया है। जिस महामानव ने बड़े-से-बड़े अन्यायी के सामने सिर नहीं झुकाया, बड़े-से-बड़े नाम वाले दम्भ का विरोध करने में झिझक नहीं दिखाई और सदैव प्रतिपक्ष को प्रेम से ही जीतने का प्रयास किया, उसके देशवाशियों को अधिक उदार और महान् बनना चाहिए। हम जब भय और शंका के शिकार होते हों, तो समझना चाहिए कि प्रेम के आदर्श से हट रहे हैं। जो प्रेम का पथिक नहीं होता वही झिझकता है, डरता है, हारता है। सत्याग्रही का रास्ता प्रेम का रास्ता होता है। वह दुनिया की दृष्टि में असफल होने पर भी हारता नहीं। हार उसकी होती है, जो प्रतिस्पर्द्धावश, घृणावश या लोभवश संघर्ष करता है। महात्मा जी ने जो मार्ग बताया है वह प्रेम का मार्ग है, मैत्री का धर्म है। उसमें कभी हार नहीं होती।

: ६ :

आलस्य और दृढ़ता

(डॉक्टर श्यामसुन्दरदास)

युवा पुरुषों के लिए इससे अच्छा कोई दूसरा उपदेश नहीं है कि 'कभी आलस्य न करो।' यह एक ऐसा उपदेश है जिसके लिए इच्छा को दृढ़ करने की अधिक आवश्यकता होती है। लोगों को इस बात का ध्यान बालपन ही से रखना चाहिए कि समय व्यर्थ न जाय। यह तभी हो सकता है, जब सारे काम नियम से और उचित समय पर किये जायँ। जो युवा पुरुष नित्य किसी काम में कुछ समय लगाता है, वह कभी चूक नहीं सकता। रहा इस बात का निर्णय करना कि किस काम में कितना समय लगाना चाहिए, सो यह उस कार्य पर और उसके करने वाले पर निर्भर है। आवश्यकता केवल इतनी है कि चाहे कितना ही थोड़ा समय किसी कार्य में क्यों न दिया जाय, पर वह बराबर वैसा ही हुआ करे; उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़नी चाहिए।

मान लिया जाय कि प्रतिदिन एक काम के लिए एक घण्टे का समय लगाया जा सकता है। अब पहले-पहल तो यह बहुत थोड़ा जान पड़ेगा, परन्तु वर्ष के अन्त में इसका फल अधिक दीख पड़ेगा; जैसे एक छोटा-सा बीज देखने में कितनी छोटी वस्तु है, पर उसे बो देने से और समय पर पानी देते रहने से वह एक बड़ा-सा पेड़ हो जाता है और उसमें फल-फूल लग जाते हैं। एक उपाय को मन में स्थिर करके उसी के अनुसार प्रति-दिन नियम के साथ काम करने ही से वह काम पूरा हो सकता है।

किसी काम के करने में एक साथ ही शीघ्रता करने लगना, और फिर उसे छोड़कर दूसरे काम में लग जाना ऐसा ही व्यर्थ और निष्फल है जैसा आलस्य करना। एक आलसी मनुष्य उस घर वाले के समान है, जो अपना घर चोरों के लिए खुला छोड़ देता है। वह पुरुष बड़ा ही भाग्यवान् है, जो यों कहता है कि "मुझे व्यर्थ के कामों के लिए छुट्टी

नहीं है, क्योंकि मैं बिना किसी आवश्यक काम के समय को नष्ट नहीं करता। प्रयोजन-बिना मुझे कोरी बकबक अच्छी नहीं लगती। काम में लगे रहने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है और जब मैं अपना काम पूरा कर लेता हूँ, तो जानता हूँ कि किस रीति से एक काम के अनन्तर विश्राम करके दूसरे काम में लग जाना होता है।" ऐसे ही मनुष्य उन्नति कर सकते हैं।

आलस्य के दूर करने का बहुत ही सरल उपाय यह है कि यह बात भली भाँति समझ ली जाय कि बिना हाथ-पैर हिलाये संसार का कोई काम नहीं हो सकता। संसार के विषय में लोग जो चाहें कहें, परन्तु यह स्थान समय को नष्ट करने का नहीं है। ऐसे स्थान में जहाँ पर सब लोग अपने-अपने काम-काज में लगे हुए हैं, आलस्य करने से केवल नाश ही होगा, लाभ कभी नहीं हो सकता।

किसी विद्वान् का कथन है कि "जीवन थोड़ा है, गुण अनन्त हैं; अवसर हाथ से निकल जाते हैं, परख पूर्ण रीति से नहीं हो सकती और वस्तुओं के विषय में बुद्धि स्थिर नहीं है।" बस, प्रत्येक मनुष्य को इन उपदेशों पर ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह सदा सचेत बना रहेगा और अपने अमूल्य समय को आलस्य से नष्ट न करेगा।

किसी काम में दृढ़ता के साथ लगे रहने से ही मनुष्य संसार में यथार्थ गौरव पा सकता और सब कामों को सफलता के साथ कर सकता है; परन्तु वह मनुष्य किसी योग्य नहीं जो अपने कामों को मन लगाकर दृढ़ता के साथ नहीं करता।

प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि वर्ड्सवर्थ अपनी यात्रा के वर्णन में यों लिखता है—"जब आकाश में मेघ दीखते और मुझे पहाड़ के ऊपर जाना होता तो मैं अपने विचार से कुछ इस कारण पलट न जाता कि पहाड़ के ऊपर जाने पर यदि पानी बरसने लगेगा तो मुझे कष्ट होगा; वरन् यह सोचकर कि अपने विचार के अनुसार दृढ़ता के साथ कार्य न करने से मेरे चरित्र में धब्बा लगेगा, मैं आँधी-पानी की कुछ भी आशंका न करता और पहाड़

पर चला जाता।" यह कैसी बुद्धिमानी का विचार है। हम ऐसे संसार में नहीं रहना चाहते जहाँ के मनुष्य थोड़ी-थोड़ी-सी तुच्छ बातों से डर जायँ; क्योंकि संसार में अगणित कठिनाइयाँ हैं, जिनको दूर करके अपने काम के करने ही में बुद्धिमानी है।

एक समय कोई मनुष्य एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने लगा। जब वह उस स्थान के निकट पहुँचा जिसको उस पहाड़ की चोटी समझे हुए था या जहाँ तक जाने का उसका विचार था, तो उसको विदित हुआ कि मुख्य चोटी अभी दो मील ऊपर है और आगे का मार्ग बड़ा ऊँचा-नीचा और बीहड़ है, जिस पर थक जाने के कारण वह कठिनता से चल सकता था, पर यह कोई ऐसी बात न थी, जिससे वह पहाड़ की चोटी तक न जा सके। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि पहाड़ की चोटी पर कोहरा गिर रहा था और सूर्य के अस्त होने में केवल एक घण्टा था। यह देखकर वह शीघ्रता से नीचे उतर आया। पर देखो, दूसरे दिन वह क्या करता है ? सवेरा होते ही वह पहाड़ पर चढ़ने लगा और अन्त में उसकी मुख्य चोटी पर जा बैठा। ऐसे ही मनुष्य जिस काम को अपने हाथ में लेते हैं, उसे पूरा करके छोड़ते हैं। इसलिए कभी किसी कठिनाई को देखकर तुम साहस न छोड़ो, विशेषकर जब तुमने अभी उस काम का आरम्भ ही नहीं किया है।

एक लोकोक्ति है कि आरम्भ में सभी काम कठिन होते हैं और फिर जो काम जितना अच्छा होगा, उसका करना उतना ही कठिन होगा और अच्छे काम ही करने योग्य होते हैं। इस संसार में, जहाँ पर परिश्रम प्रधान वस्तु है, दृढ़ और पक्का मन ही सब कामों को कर सकता है। वह मनुष्य संसार में कभी नहीं सुखी हो सकता, जो पाँसे को इसलिए पटक मारता है कि पहली बार पाँसा डालने ही में वह नहीं जीत गया।

: ७ :

हिमालय की पहली सिखावन

(आचार्य काका कालेलकर)

भीमताल से आगे चले। रास्ता समतल था। दूर बाईं तरफ एक कतार में रावटियाँ दिखाई देती थीं। दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि वहाँ बीमार सिपाही रहते हैं। आखिर पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। अपार आनन्द हुआ और चिर-परिचित समतल भूमि पाकर हम तेज़ी से चलने लगे।

परन्तु हिमालय ने तो मानो एक ही दिन में सारे सबक सिखाने की ठान ली थी। उसने फिर हमारे अभिमान पर आघात किया। 'अरेबियन नाइट्स' में अथवा 'पंचतन्त्र' में जिस प्रकार एक कहानी में से दूसरी नई कहानी निकल पड़ती है, उसी प्रकार इस पर्वत-शिखर पर चौड़ा होकर बैठा हुआ एक नया पहाड़ आ धमका। चार मज़दूरों के कन्धों पर आरामकुरसी पर बैठे हुए किसी अमीर जैसी गम्भीर भव्यता से और अपनी महत्ता के परिपूर्ण मान का परिचय देने वाली स्वाभाविकता से यह पर्वत विराजमान था। अगर यह खड़ा होता तो ? तो मेरे खयाल में आकाश का चँदोवा फट ही जाता।

हमें इस बड़े भारी पहाड़ पर चढ़ना था। इसीलिए हमने अपने पास के असबाब का सारा बोझ मज़दूरों को दे दिया; अभिमान का बोझ तलहटी में ही छोड़ दिया और बादलों की तरह बिलकुल हल्के होकर हम चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते ठेठ साँझ तक चढ़ते ही चले गए।

रास्ते में एक तरह के फूल खिल रहे थे। उनका आकार बारहमासी के फूलों जैसा था और रंग खूब उबाले हुए दूध की मलाई की तरह कुछ पीला। सुगन्ध की मधुरता की तो बात ही क्या ? सुगन्ध गुलाब से मिलती-जुलती, पर गुलाब के समान उग्र नहीं। इन लज्जा-विनय-सम्पन्न फूलों को देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मेरा अध्वखेद नष्ट हो गया। ऐसे

सुन्दर और आतिथ्यशील फूलों का नाम जाने बिना मुझसे कैसे रहा जाता ! लेकिन रास्ते में कोई आदमी ही न मिलता था। मज़दूर तो अपने मजदूर-धर्म के प्रति वफादार रहकर पिछड़ गया था। उसकी बाट जोहने के लिए समय न था और नाम जाने बिना आगे बढ़ने की इच्छा न थी। इतने में पहाड़ की एक पगडण्डी पर कोई पहाड़ी उतरता हुआ दिखाई दिया। हिमालय की पगडण्डियाँ इतनी विकट हैं कि आदमी की कमर ही तोड़ दें। उस पहाड़ी से मैंने हिन्दी में—या सच पूछिये तो उस समय जिसे मैं हिन्दी समझता था, उस भाषा में—उन फूलों के विषय में कई प्रश्न पूछे। उसने पहाड़ी हिन्दी में जवाब दिया, परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह मेरे प्रश्नों को समझ सका होगा। मैं तो उसके जवाब का एक शब्द भी न समझ सका; किन्तु इस सम्भाषण से (मैं नहीं जानता, इसे सम्भाषण कह सकते हैं या नहीं) फूल का नाम तो मुझे मिल ही गया। असीरिया की शरशीर्ष लिपि में लिखे हुए शिला-लेख पढ़कर कोई विद्वान् उनका अर्थ लगाने के लिए जितना प्रयास कर सकता है, उतने ही प्रयास से मैंने पता लगाया कि फूल का नाम 'कूजा' था। मालूम पड़ता है, पहाड़ी भाषा में यह शब्द बहुत सुललित समझा जाता होगा; लेकिन खुद मुझे उस नाम ने बिलकुल मोहित नहीं किया।

दूर, बहुत दूर, अब क्षितिज दिखाई देने लगा। वहाँ बहुत घने बादल थे। बादलों पर संगममर के पर्वत-शिखर जैसा कुछ दिखाई देता था। तलहटी का हिस्सा बादलों से ढक जाने के कारण ऐसा जान पड़ता था, मानो मैनाक पर्वत का एक बच्चा आकाश में उड़ रहा हो। दूसरे दिन मुझे पता चला कि वह पवित्र नन्दादेवी का शिखर था।

कुछ उतरकर हम रामगढ़ आ पहुँचे। वहाँ एक छोटी-सी धर्मशाला थी। धर्मशाला क्या, पाँच फुट ऊँचे कमरों की वह एक ऐसी कतार थी, जिनमें एक-एक छोटे दरवाज़े के सिवा किसी जगह छिद्र नाम की कोई चीज नज़र नहीं आती थी। बनिये से दाल, चावल और आलू खरीद

लिये। उसने दो-तीन बरतन भी दिये। हमने सोचा—'कैसा भला बनिया है, रसोई के बरतन भी देता है।' बाद में मालूम हुआ कि पहाड़ पर तो यह दस्तूर ही है। आटा-चावल के दामों में बनिया बरतनों का किराया भी लगा लेता है। फिर भी, वहाँ का यह रिवाज़ बेशक अच्छा है। ज्यों-त्यों पकाकर थोड़ा-बहुत खाया, क्योंकि हमारी रसोई ठीक से पकी नहीं थी।

धर्मशाला की सूरत देखकर हमने बाहर खुले में सोने का विचार किया और बिछौना बिछाया। इतने में हिमालय ने कहा—"लो नया सबक सीखो।" इतनी सख्त ठण्ड लगने लगी कि मन्त्र-मुग्ध साँप जिस प्रकार अपने-आप पिटारी में घुस जाता है, उसी प्रकार हम भी बिस्तर लेकर अब खूबसूरत मालूम होने वाली उस गरम कोठरी में जा घुसे। हमें यह विश्वास हो गया कि कमरे में एक भी खिड़की न रखकर धर्मशाला बनाने वाले शिल्पी ने मयासुर से भी अधिक कौशल से काम लिया है।

सारा दिन चलते ही रहे थे। पहली ही बार इतनी लम्बी—बीस मील की—यात्रा की थी। रात को पेट-भर खाया भी न था, तिस पर ठण्ड नाम पूछ रही थी। इसीलिए बहुत मनाने पर भी नींद तो पास फटकी तक नहीं। जब निद्रादेवी न आईं तो उनकी सदा की बैरिन चिन्ता और कल्पना हाजिर हो गईं। मैं सोच में पड़ा—घर-बार छोड़कर, समाज की सेवा से मुँह मोड़कर, पुस्तकें पढ़ना भूलकर, अखबारों में लेख लिखने से विरत होकर, मैं किसलिए यहाँ आया? ईश्वर ने मुझे जिस स्थान में नियुक्त किया, उस स्वाभाविक स्थान को छोड़कर इस अनजाने प्रदेश में क्यों आया? चूँकि मैं विरक्त हो उठा था और चूँकि हिमालय वैराग्य की ननिहाल है, क्या इस विचार से मैं यहाँ आया हूँगा? अगर हिमालय में वैराग्य होता तो ये गोरे भीमताल में जाकर मछली क्यों मारते? रामगढ़ का वह बनिया ग्राहकों से ज्यादा-से-ज्यादा नफा लेने की कोशिश क्यों करता? नीचे मैदान में जिस तरह के लोग रहते हैं, उसी तरह के लोग इस पहाड़ पर भी हैं। यहाँ भी स्त्री अपने पति

से झगड़ती है, यह पोस्ट-मास्टर शिकायत करता है—'मेरा यह लड़का मेरा कहना नहीं मानता,' और लोग पशुओं से उनकी शक्ति से कहीं ज्यादा काम लेते हैं। निस्सन्देह पहाड़ों में व्यापार नहीं बढ़ा है, रेल नहीं पहुँची है, बस्ती घनी नहीं है और इन कारणों से समाज में जो सड़ाँद पैठती है, वह यहाँ नहीं पैठी है।

इस पराये देश में न कोई मेरी भाषा जानता है, न कोई मुझे पहचानता है, न कोई मेरा सगा-सम्बन्धी ही यहाँ है। और जिस वैराग्य के लिए मैं यहाँ आया, उसका यहाँ नाम-निशान नहीं है, इस खयाल से दिल परेशान होने लगा। इसलिए बाहर कड़ाके का जाड़ा होते हुए भी मैं एक कम्बल ओढ़े बाहर निकला। मैंने निश्चय किया था कि हिमालय की अपनी यात्रा में मैं सुई से सिला हुआ कोई कपड़ा न पहनूँगा। दिन में तो धोती, चादर और कान ढकने के लिए मफलर-भर इस्तेमाल करता था। रात को बिछाने के लिए एक चटाई और कम्बल रखता था और ओढ़ने के लिए एक दोहर तथा बेंगनी रंग का एक मुटका। जब बाहर निकला तो आकाश निरभ्र था। नक्षत्र अद्भुत कान्ति से चमक रहे थे। हिमालय आने से पहले मेरे एक रसिक मित्र ने नवसारी में तारों से मेरी जान-पहचान करा दी थी। तारे मेरे दोस्त हो गए थे। पूर्णिमा के चन्द्र से भी न डरने वाले सभी तारों को मैं पहचानता था। मैंने उनकी तरफ देखा। उन्होंने कहा, "भाई, घबराते क्यों हो ? यह परदेश कैसा ? क्या यहाँ तुम्हारा अपना कोई सगा-सम्बन्धी नहीं ? देखो, हम इतने सारे तुम्हारे दोस्त यहाँ ज्यों-के-त्यों मौजूद हैं। दो घड़ी सुस्ताओगे तो दूसरे भी कई उस पहाड़ की ओट से जल्दी ही ऊपर आएँगे। क्या तुम हमें भूल गए ? क्या अपने और हमारे सिरजनहार को भूल गए ? कहाँ गया तुम्हारा प्रणव मन्त्र ? कहाँ गया तुम्हारा गीता-पाठ ?

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं।
न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः ।

यह सब तुम्हीं कहते थे न ? आज ही सवेरे उस नदी ने तुमसे क्या कहा था ? इस पहाड़ को देखकर तुम्हारे दिल में कौनसे विचार आये थे ? क्या उन कूजा-कुसुमों की विश्व-सेवा का तुम पर कोई असर नहीं हुआ ? क्या नन्दादेवी का दर्शन निष्फल हुआ ? छोड़ दो इस हृदय-दौर्बल्य को । मन के उद्वेग को त्याग दो ।" मेरी यह अश्रद्धा कि हिमालय में भी वैराग्य नहीं है, गायब हो गई । बाह्य सृष्टि और अन्तःसृष्टि में तादात्म्य हो गया और मुझे शान्ति मिली । मैं आसानी से सो गया ।

सवेरे उठकर आगे चले । आज तो उतरना था । जितना चढ़े थे, उतना ही उतरना पड़ा । रोम के लोगों को अपना महा साम्राज्य गँवाते समय भी इतना दुःख न हुआ होगा । कितनी मुश्किल से चढ़े थे ।

लेकिन फिर भी आखिर उतरना पड़ा । हिमालय में चलने का एक नया अनुभव हुआ । ऊपर चढ़ते समय थकावट तो होती है, लेकिन वह क्षणिक होती है । पर सीधे उतार पर से उतरते वक्त जो कष्ट होता है, उससे आदमी की हड्डी-पसली नरम हो जाती है । ऐसे उतार का अनुभव होते ही मैं बोल उठा—"स्वर्ग तक चढ़ना पड़े तो वह बेहतर है, लेकिन विधाता ! ऐसे उतारों पर से उतरने की सज़ा तो कदापि मेरे 'शिरसि मा लिख, मा लिख, मा लिख !' "

यहाँ का यह प्रदेश भी बहुत रमणीय था । हमारे यहाँ के सरों के पेड़ों के समान चीड़ और देवदार के भव्य वृक्षों की झाड़ियाँ अनुपम छाया का विस्तार करती थीं; लेकिन सच्चा मज़ा तो तब आता जब नीचे गिरकर सूखे हुए मलाइयों जैसे पत्तों पर से पैर फिसलते थे । उस वक्त यही समझ में न आता कि हँसें या रोयें ।

इस प्रदेश में थोड़ी-सी खेती भी होती हुई मालूम पड़ी; क्योंकि रास्ते में एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव आया । वहाँ दो-चार किसान नया अनाज पछोर रहे थे । हवा का नाम भी न था, इसलिए दो आदमी एक चादर से हवा झल रहे थे ।

रास्ते में चीड़ के बड़े-बड़े फूल बिखरे हुए दिखाई दिए। इन फूलों का वर्णन करना असम्भव है। ये फूल नारियल से भी बड़े होते हैं, इनकी पंखुड़ियाँ बबूल की लकड़ी से भी सख्त होती हैं। फिर भी यह फूल आकार में बहुत ही सुन्दर होता है। ऐसा लगता है, मानो हर एक डण्ठल के माथे में से अँगुली के बराबर असंख्य पंखुड़ियों का एक फव्वारा ही फूट पड़ा। लेकिन रंग या सुगन्ध का तो नाम ही न लीजिये। लकड़ी का ही रंग और लकड़ी की ही बास। देवदार और चीड़ जैसे वृक्ष हिमालय को ही शोभा देते हैं। प्रकृति का विशाल वैभव देखकर मैं दिङ्‌मूढ़ हो गया, और गाने लगा :

रामा दयाघना, क्षमा करुनि मज पाहि,
रामा दयाघना०
कोठिल कोण भी, न जाणिला ही पत्ता
आजवरि अज्ञानें, मिरविली विद्वत्ता,
देहात्मत्वाची स्थिति झाली उन्मत्ता।
ये उनि जन्मा रे ! व्यर्थ शिणविली आई,
हेंचि मनिं खाई—
रामा दयाघना०

'हे दयाघन राम, मुझे क्षमा करके मेरी रक्षा करो। मैं कहाँ का कौन हूँ, यह न जानते हुए आज तक अज्ञान से विद्वत्ता बघारता रहा। देहात्मत्व की स्थिति उन्मत्त हो गई। मैंने पैदा होकर माँ को व्यर्थ ही कष्ट दिया। यही बात दिल को चुभती है।'

सचमुच ही निकम्मा जीवन बिताकर मैंने अपनी माता को अपने भार से ही मार डाला था; केवल जननी को ही नहीं जन्मभूमि को भी। मुझे अपने अतीत जीवन से मन-ही-मन घृणा हुई। अज्ञानवश मैं विद्वत्ता की शेखी बघारता था, खुद अन्धकार में रहकर लोगों के सामने प्रकाश की बातें करता था।

मैं अपना भजन आगे गाने लगा :

करुणासागरा ! राघवा रघुराजा !
विषयीं पाँगलों नका करूँ जीव माझा ।
भुलुनि प्रपंचारे, भ्रमुनि भ्रमुनि ठायीं-ठायीं,
हरुनि वय जाई—
रामा दयाघना०

अर्थात्—'हे करुणासागर राघव रघुराज, विषयों से मेरे प्राण अपंग न बनाइए।···अरे, इस प्रपंच में फँसकर जगह-जगह श्रमित और थकित होकर आयु क्षीण हो जाती है। हे दयाघन राम···!'

भजन की धुन सवार हो गई। मैं उच्च स्वर से ललकार रहा था। आगे यह चरण आया :

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवल,
सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवल ।

सामने वाले पहाड़ ने एकाएक गर्जना की :

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवल ।

हिमालय की वह मेघ-गम्भीर गर्जना मुझे तो अशरीरिणी वाणी प्रतीत हुई। सचमुच ही मैं सच्चित् सुखात्मक परब्रह्म हूँ। मैं इसे भूलता हूँ, इसीलिए पामर बन जाता हूँ। ज़रा देखो तो, यह धीर-गम्भीर हिमालय किस प्रकार सच्चित्सुख की समाधि का उपभोग कर रहा है। इस बर्फ को देखो। गरमी और जाड़ा दोनों इसके लिए बराबर हैं। देखो, इस विशाल आकाश को देखो, कितना शान्त और अलिप्त है ! क्या मैं इससे भिन्न हूँ ?

मुझ पर अद्वैत की मस्ती सवार हो गई। इसलिए पीउड़ा कब आ गया, इसका मुझे भान भी न रहा। पीउड़ा के पानी की बड़ी तारीफ सुनी जाती है। क्षयरोगी यहाँ का पानी खास तौर पर मँगाकर पीते हैं। पीउड़ा में हमने भोजन बनाकर खाया, थोड़ा आराम किया और आगे बढ़े; फिर उतार। मेरे घुटनों में दर्द होने लगा, इसलिए फिर यह वृत्ति जागृत हुई कि मैं देहधारी हूँ। धीरे-धीरे मैं फिर आसपास की

सुन्दरता निहारने लगा।

हिमालय की खेती देखने लायक होती है। जहाँ बैठी और चौड़ी पहाड़ी होती है, वहाँ किसान चोटी से तलहटी तक दो-दो चार-चार हाथ चौड़ी सीढ़ियों के समान क्यारियाँ बनाते और उसमें हाथ से खोदकर अनाज बोते हैं। इन खेतों का दृश्य नदी के पक्के घाट के समान दीख पड़ता है।

जहाँ उतार खत्म हुआ, वहाँ एक झूलता पुल आया। उस पुल को 'लोधिया का पुल' कहते हैं। पुल के नीचे के पत्थर देखने लायक हैं। नदी के प्रवाह से घिसे हुए पत्थरों का आकार बहुत सुहावना दिखाई देता है। जहाँ पानी की भँवर पड़ती हैं, वहाँ तले के खुले पत्थर भी गोल-गोल चक्कर काटकर तले के पत्थरों में जो गहरे-गहरे गढ़े बनाते हैं, उनका दृश्य मनोबेधक होता है।

इस पुल के नीचे मैंने एक साँप देखा। यहाँ इसका उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि हिमालय के घने जंगलों में और दूसरे भिन्न-भिन्न प्रदेशों में मैंने जो दो-तीन हजार मील की यात्रा की, उसमें सिर्फ दो साँप देखने में आए—एक यहाँ, दूसरा गंगोत्री के पास। अब फिर चढ़ाई शुरू हुई। दूरी पर एक पहाड़ी शहर दिखाई देने लगा। यह अलमोड़ा था या मुक्तेसर, मैं इसका निश्चय नहीं कर सका। साँझ होने लगी और आखिर हम अलमोड़ा के पास पहुँचने लगे। वहाँ एक चुङ्गीघर था। वहीं हमने एक बैलगाड़ी की लीक देखी। हिमालय में बैलगाड़ी की लीक सभ्यता की परिसीमा समझी जाती है। हमारे यहाँ की किसी राजधानी में संग-मरमर का कोई रास्ता हो तो उसके विषय में लोग जिस उमंग और अदब के साथ बोलते हैं, उसी उमंग और अदब से पहाड़ी लोग इस 'कोर्ट रोड' के विषय में बोलते हैं। बगल ही में मुसलमानों का कब्रिस्तान था। पर्वत की वन्य-शोभा में ये सफेद-सफेद कब्रें भौंड़ी नहीं लगती थीं। अक्सर मुसलमान कुदरत की शोभा बिगाड़ते नहीं। साँझ के समय ये कब्रें ऐसी लगती थीं मानो चरागाह से लौटी हुई गायें आराम से बैठी-

बैठी जुगाली कर रही हों। ३७ मील की यात्रा कुशलतापूर्वक की, लेकिन आखिर हम रास्ता भूल गए। हमने अलमोड़ा की आधी परिक्रमा की। रास्ता छोड़कर लोगों के आँगनों में से होते हुए और अनेक घूरे खूँदते हुए अन्त में हम सात बजे बाजार में पहुँचे। बाजार का रास्ता पत्थरों से पटा हुआ है। वहाँ 'हिल बायज़ स्कूल' का रास्ता पूछते-पूछते हम अपने एक मित्र के मकान पर पहुँच ही गए।

: ८ :

शिकार

(श्री धर्मवीर एम० ए०)

शिकार का स्मरण आते ही शरीर में एक नवीन स्फूर्ति आ जाती है। वे दिवस भी कितने अद्भुत थे जब रात-दिन यदि कोई धुन थी तो शिकार की। मारे-मारे वनों में फिरते रहते, पर कोई शिकार दिखलाई न पड़ता था; सामने आकर भी जब प्राण लेकर भाग जाता, कितनी निराशा होती! कितनी व्यग्रता थी, कितनी चिन्ता थी!

बड़े दिन की छुट्टियों में हम कर्नल डोनल्ड के साथ खंडवा (मध्य प्रदेश) के लिए चल पड़े। पामाखेड़ी का जंगल खंडवा स्टेशन से साठ मील है। मोटर के अतिरिक्त लारी का प्रबन्ध करके दस बजे रवाना हुए। मार्ग में नर्मदा पार करनी पड़ती है। पुल न होने के कारण नदी को नावों से पार करना पड़ता है। एक नाव किनारे पर तैयार खड़ी थी। उसमें मोटर को लादा गया। सबसे बड़ी नाव लारी के लिए मँगवाई गई; परन्तु लारी उसमें न आ सकी। दो नावों को बाँधकर एक बनाया गया। जब वह नदी के बीच में पहुँची, तब लारी के बोझ के

मारे नाव के तख्ते एक दम टूटने लगे। तीन तख्ते तो देखते-देखते टूट गए। प्रकट होता था कि बस, अब हम बगैर पनडुब्बी के नदी के अन्त-स्तल में पहुँचे, और शेरों की बजाय मगरमच्छों से हमारी मुठभेड़ होगी। भाँति-भाँति के विचार आने लगे। परन्तु सौभाग्य से और कोई तख्ता नहीं टूटा, और बड़ी कठिनाई के बाद सूर्यास्त के समय हम पामाखेड़ी पहुँच गए।

यहाँ डाकबँगले में ठहरे। शिकारियों को बुलवाकर शिकार के विषय में परामर्श होने लगा। निश्चय हुआ कि चार स्थानों पर पाड़े बाँधे जायँ। रात को खूब ठंड पड़ी। कार्यक्रम के अनुसार प्रातः पाँच बजे उठे। आध घण्टे में तैयार होकर अँधेरे में ही काह्ला शिकारी के साथ जंगल को चल पड़े। पाड़े बाँधने के ऐसे तीन स्थान चुने गए, जहाँ शेर उजाले तक विद्यामान रहे। लगभग सत्तर फुट की दूरी पर फूँस की टट्टियाँ आड़ के लिए खड़ी की गईं। इस तक पहुँचने के लिए पगडण्डी का मार्ग साफ करने का आदेश देकर नौ बजे हम कैम्प में वापस आ गए। आते ही शिकारी ने सूचित किया कि एक पाड़े को शेर ने रात में मार दिया है और उसे घसीटकर वह जंगल में ले गया है।

यह जगह कैम्प से डेढ़ मील दूर थी। चाय का एक प्याला पीने के बाद हम चल दिए। शिकारी ने कहा—"यह शेर बहुत बड़ा है।" रास्ते में शेर के पंजों के चिह्न मिले। देखने से मालूम हुआ कि वे शेरनी के हैं। शेरनी ने पाड़े को मारने के बाद उसका पेट फाड़कर मेदा निकाल दिया और लाश घसीटकर जंगल में ले गई। हम लगभग सौ गज गये होंगे कि एक झाड़ी के पास आधी लाश मिली। शेष शेरनी चट कर गई थी। लाश को घास और पत्तों से ढक दिया गया, ताकि गिद्ध न खा जायँ। अब यह निश्चय हुआ कि हाँका न करवाकर रात को मचान पर बैठना चाहिए। खाना खाने के बाद शाम को मचान बँधवा दिया गया। कर्नल होनल्ड चुपके-से पौने पाँच बजे ही मचान पर बैठ गए और हम लोग आध मील पर जंगल में प्रतीक्षा करने लगे। ज़रा-सी आहट

या पक्षियों की आवाज सुनने पर यह लगता कि बस अब गोली चलने वाली है। प्रतीक्षा में ही आठ बज गए। इतने में मचान से बिगुल बजा कि आ जाओ; बड़ी निराशा हुई। लैम्प और टार्च लेकर गये। कर्नल ने बताया कि शेर साढ़े छः के लगभग आया था, परन्तु कुछ सन्देह के कारण वह पाड़े के निकट न आया।

अगले दिन फिर प्रातः साढ़े पाँच बजे निकले। कुछ एक साँभर मिले। परन्तु सींग छोटे थे, इसलिए गोली न चलाई। कैम्प में आने पर ज्ञात हुआ कि शेरनी न तो वह आधा पाड़ा खाने आई और न किसी दूसरे स्थान पर ही उसने पाड़ा मारा। जहाँ शेरनी ने पहले पाड़ा मारा था, उसी स्थान पर रात को दूसरा पाड़ा बँधवाया गया।

फिर पाँच बजे प्रातः निकले। कालादेव स्थान से काल्ला शिकारी को साथ लिया। उससे कहा गया कि जिस भाग में साँभर अधिक मिलते हैं, वहीं चलें। एक स्थान पर छोटी-सी झोंपड़ी थी। वहाँ आकर दो बड़े साँभर रात को कीचड़ में लोटते थे। बिलकुल ताजे निशान लगे हुए थे। (अधिक सरदी पड़ने पर साँभर रात को कीचड़ में लोटता है)। थोड़ी ही दूर गये थे कि एक चीतल दिखाई दिया। उसके साथ तीन-चार मादा थीं। उनमें से एक ने हमें देख लिया। फलस्वरूप बन्दूक सीधी करने से पहले ही वे भाग निकले; परन्तु सींग छोटे होने के कारण इन पर भी गोली न चलाई गई। कैम्प में वापस आने पर मालूम हुआ कि शेरनी ने एक जगह रात को पाड़ा मार डाला है और उसकी लाश को घसीटकर जंगल में ले गई है। उसी समय हम देखने के लिए चल पड़े। रास्ते में एक बड़े शेर के पंजे के चिह्न मिले। दूसरी ओर मार्ग पर शेरनी के पंजों के चिह्न थे। विचार आया कि शेर और शेरनी, दोनों ने मिलकर पाड़ा मारा है। जंगल में थोड़ी दूर पर लाश का एक भाग मिला। बड़े भाग को वे रात ही में खा गए थे। यह स्थान हाँके के लिए अच्छा न था, इसलिए मचान बँधवाया गया। शाम को साढ़े चार बजे कर्नल मचान पर बैठ गए। आज दस बजे तक बैठने का निश्चय

हुआ। अँधेरा हुआ ही था कि एक साँभर ने चिल्लाना शुरू किया। आवाज प्रकट करती थी कि उसने शेर को देखा है। फिर मोर भी चिल्लाने लगे। अब तो शेर के आने का पक्का विश्वास हो गया। कुछ देर के बाद सन्नाटा छा गया। अब निराशा ने आ दबाया। साढ़े सात बजे ही बिगुल की आवाज आ गई कि आ जाओ। कर्नल ने कहा—"शेर बड़ा चालाक है। वह पाड़े के पास नहीं आया। ऐसा मालूम होता है कि दूर से ही पानी की तरफ चला गया है। पता नहीं, कब वापस आये। अधिक समय तक बैठने में कोई मज़ा नहीं है।" रात को हम जल्दी ही सो गए। प्रातः हम बाँकाप्लास के जंगल में, जो कैम्प से बारह मील दूर था, गये। इसमें सुअरों और चीतलों का आधिक्य था। गाँव वालों ने कहा—"बैलगाड़ी में जाने से जानवर नहीं भागते।" इस पर दो बैलगाड़ियाँ लेकर हम अलग-अलग दिशा में निकले। कर्नल ने तो तीन-चार फायर किये; परन्तु हमको मारने योग्य कुछ भी दिखलाई न दिया। हमने गाड़ी वाले से कहा—"इधर कुछ नहीं है। कर्नल की दिशा में ही चलो।" कुछ दूरी पर एक सुअर दृष्टिगोचर हुआ, परन्तु गाड़ी की आवाज से वह भाग गया। हम गाड़ी छोड़कर पैदल चलने लगे। फिर सुअर मिले। इनमें से एक पर, जो सबसे बड़ा था, मैंने फ़ायर किया। गोली उसकी गरदन में लगी। उसने हमें देख लिया और दो-चार पग ही हमारी ओर आया होगा कि गिर गया। दूसरी गोली ने उसे वहीं समाप्त कर दिया। कर्नल ने एक बहुत ही बड़ा सुअर मारा। उसके दाँत बहुत बड़े थे। इतना मोटा सुअर पहले कभी देखने में न आया था। कर्नल ने दो नीलगाय और कुछ हरियल भी मारे। कैम्प में आने पर मालूम हुआ कि रात को शेर लाश का शेष भाग भी चट कर गया है। इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थान पर शेर पाड़े को मारकर उसे जंगल में घसीट ले गया था; भोजन करने के पश्चात् हम उसे देखने गये। जगह बहुत अच्छी थी; कर्नल मचान पर नौ बजे तक बैठे थे, परन्तु शेर न आया। यह विचार हुआ कि शेर का शिकार होना बड़ा

कठिन है। निश्चय हुआ कि नौ बजे तक कर्नल मचान पर बैठा करें, उसके पश्चात् बारह बजे तक हममें से एक।

अगले दिन प्रातः हम फिर साँभर के लिए गये। जंगल में फिरते-फिरते एक पहाड़ी के ऊपर बड़ा-सा नर नील दिखाई पड़ा। कर्नल ने गोली चलाई, पर नील जख़्मी होकर भाग गया। हम खून के पीछे-पीछे जाने लगे। नील एक स्थान पर बैठ गया। हमें आते देखकर वह चिल्लाता हुआ भागा और पहाड़ी के नीचे उतर गया। खून बहुत बह रहा था। हम लोग उसके पीछे जाने लगे। उसकी आवाज़ सुनकर एक शेर उसकी ओर दौड़ा। कुछ दूरी पर शेर ने उसे पकड़ भी लिया। पिछली टाँग तोड़कर वह उसे नाले में घसीट ले आया। नील खूब चिल्लाया। वह अन्तिम साँस छोड़ रहा था। हम धीरे-धीरे आगे बढ़े। एकाएक क्या देखते हैं कि शेर ने बेचारे नील को पकड़ रखा है। हमें देखते ही शेर भाग गया। यह बड़ा ही भयानक समय था। प्रायः ऐसे ही अवसर पर शेर आदमी पर आक्रमण कर देता है। तब एक बार मनुष्य को मारने के पश्चात् उसे विश्वास हो जाता है कि मनुष्य को मारना कितना सुगम है। इसके बाद वह मनुष्य-भक्षी हो जाता है। मनुष्य-भक्षी हो जाने के और भी कई कारण होते हैं। नील अभी जीवित था। उस बेचारे को एक और गोली ने मुक्ति दिलाई। यह स्थान कैम्प से काफी दूर था। भोजन के लिए वापस जाना हमारे लिए आवश्यक था। भोजन के अतिरिक्त यह विचार भी था कि सम्भव है, कैम्प में दूसरी जगह से कोई अच्छी खबर आई हो। अब मचान पर बैठना कठिन हो गया। निर्णय हुआ कि प्रातः चुपके-चुपके आएँगे। बहुत सम्भव है कि तब शेर लाश के पास मिल जाय। बाँस की दो सीढ़ियाँ बनवाकर दो वृक्षों से खड़ी करने और रास्ते से पत्ते वग़ैरा साफ करने के लिए शिकारी को समझाया गया। अँधेरे में जंगल का मार्ग मालूम करने के लिए वृक्षों को जगह-जगह छील दिया गया। कैम्प में लौटने पर मालूम हुआ कि शेर ने बँगले के पास ही आबादी के जंगल में फ़ारेस्ट गार्ड (वन-रक्षक) की भैंस को मार डाला

है। उसका बहुत थोड़ा भाग वह खा पाया था। यहाँ मचान बँधवाया
गया। शाम को कर्नल जल्दी ही बैठ गए, परन्तु शेर दस बजे तक न
आया।

दूसरे दिन प्रातः पाँच बजे ही निकल पड़े। मार्ग में कान्हा शिकारी
को साथ लिया। उसे थोड़ी दूर तक साथ रखा। यह जमीन पर खड़े-खड़े
शेर पर गोली चलाने से बहुत डरता था। इसका एक विशेष कारण था।
एक बार एक अच्छे अंग्रेज़ी शिकारी को यह जंगल में घुमाने के लिए ले
गया। एक शेर अचानक दिखाई पड़ा। अंग्रेज़ ने फ़ायर कर दिया। शेर
घायल होकर उसकी ओर दौड़ा। कान्हा पास के वृक्ष पर चढ़ गया।
अंग्रेज ने एक और फ़ायर करके शेर का तो अन्त कर दिया, परन्तु स्वयं
बहुत ही बुरी तरह से लहू-लुहान हुआ। उसे वह अस्पताल ले गया, जहाँ
वह खून में ज़हर चढ़ जाने से मर गया। इस घटना ने कान्हा को सदा
के लिए भीरु बना दिया।

धीरे-धीरे हम आगे बढ़ने लगे। उजाला इतना अधिक हो गया था
कि बन्दूक की मक्खी अच्छी तरह से दिखाई देने लगी। अचानक ही हम
से एक ने शेर का कान हिलते देखा और कर्नल को संकेत किया। ह
वहीं बैठ गए। दूरबीन से देखा तो पता लगा कि शेर लाश से ज़रा दू
किनारे पर सोया पड़ा है। दूरी अधिक थी। सोचा, यदि हम करीब स
गज आगे निकल जायँ तो सीढ़ी पर चढ़कर फायर कर सकते हैं। बैठे
बैठे ही आगे और सीढ़ी के निकट पहुँचे; शेर सौ फुट होगा। कर्नल
देखा, एक शेरनी भी नाले में लाश के पास खड़ी-खड़ी उसे खा रही है
मुझे नीचे संकेत किया। इतने में शेर का एक बड़ा बच्चा एक बाँस
पीछे नज़र आया। कर्नल ने संकेत किया कि दूसरी सीढ़ी पर (जो पचा
गज की दूरी पर थी) चढ़ जायँ तो फिर गोली चलाऊँ। अब बिना आह
के इतनी दूर जाना बड़ा कठिन था। हममें से एक बन्दूक उठाये बैठे-बै
बैठे सीढ़ी के पास सात-आठ मिनट में पहुँच गया। कर्नल दूसरी सीढ़ी
तरफ देखने लगे। इतने में ही शेर और शेरनी दोनों जंगल को च

दिए। उन्होंने कोई ग्राहट न पाई थी। या तो उनको बदबू ग्रा गई या वैसे ही सवेरा होने से चल दिए। कर्नल ने लगभग ग्राध घण्टा प्रतीक्षा की कि वे निकट ही पानी पीने गये होंगे। इतने में एक कौवा ग्राकर लाश को खाने लगा। यदि शेर निकट होता तो कौए पर तुरन्त लपकता। ऐसा न होने से स्पष्ट था कि वे चले गए हैं। हम निराश होकर सीढ़ी से उतर कान्हा के पास ग्राये; सब बातें बताईं। ग्रब ग्रागे क्या करना चाहिए? मोटर के पास जाकर कहवे का एक-एक प्याला पीने के बाद परामर्श होने लगा। निश्चय हुग्रा कि हाँका करना चाहिए। ग्रादमियों को पर्याप्त संख्या में एकत्र करना कठिन था। संयोग से कत्था बनाने वाले ठेकेदार के कुछ ग्रादमी ग्रा निकले। ठेकेदार का मुसलमान मुन्शी उनके साथ था। हमने उसे कहवा पिलाया ग्रौर सेब ग्रौर नारंगी खिलाईं। उसकी सहायता से सभी ग्रादमियों को हाँके के लिए तैयार किया। दो वृक्षों पर ग्रलग-ग्रलग जगह लकड़ी के डण्डे बाँधकर हम बैठ गए। हाँका शुरू हुग्रा। एक ग्रच्छी जगह पर कर्नल को बिठाया गया, पर ग्रचानक हमारी तरफ से एक बड़ा शेर निकला। बाँस बहुत ग्रधिक थे। ऐसी दशा में फायर करना उचित न था। परन्तु यह शेर हाँके से बाहर जा रहा था। हममें से एक ने गोली चलाई। फायर खाली गया। दूसरा शेर इसके बाद कर्नल की तरफ से निकला। उस पर कर्नल ने गोली चलाई। वह गरजता हुग्रा थोड़ी दूर जंगल में जाकर गिर गया। जख्मी शेर को ढूँढना शेर के शिकार का सबसे भयानक कार्य होता है। परन्तु यह समय ऐसा ही था। हमारे पास तीन बन्दूकें थीं। हम बन्दूकें लेकर पहली लाइन में थे। हमारे पीछे चार ग्रादमी थे। इनके पास कुल्हाड़ियाँ थीं। खून देखकर हम शेर की ग्रोर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। हमारे साथ दो ग्रादमी ऐसे थे, जो वृक्षों पर चढ़कर सामने देखते थे। कोई सौ गज गये होंगे कि एक मनुष्य को शेर नाले में पड़ा हुग्रा दिखाई पड़ा। उसने बताया कि शेर मरा नहीं, ग्रभी जीवित है। यह बहुत भयानक समय था, हमारे दिल धड़कने लगे, साँस लेने के बाद ज़रा ग्रागे बढ़े। ग्रब

हमको भी शेर नज़र आया। वास्तव में वह मर चुका था। एक और फायर किया। वह हिला-डुला नहीं। वह नर था। उठाकर कैम्प में लाये।

जब कैम्प में पहुँचे, तब शेर मारने का समाचार सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए। यह बात गाँव में भी फैल गई। स्त्री, पुरुष और बच्चे देखने के लिए एकत्र होने लगे। बँगले के सामने एक मेला-सा नज़र आने लगा। इतने में शेर की लाश सबके सामने आई। आध घण्टे तक लोगों ने देखा। वृद्ध स्त्रियाँ तो शेर को माथा टेकती थीं। अब चमार आये; उन्होंने चमड़ा निकालना शुरू किया। रात के ग्यारह बजे चमड़ा निकालने का काम समाप्त हुआ। शेर का चमड़ा निकालना साधारण काम नहीं होता। पंजों, कानों और खोपड़ी की सफाई के लिए सावधानी और अनुभव की आवश्यकता होती है, क्योंकि ज़रा-सी भूल से चमड़े के बाल गिर जाते हैं।

: ६ :

श्री गुरु अर्जुनदेवजी

श्री गुरु अर्जुनदेवजी का जन्म संवत् १६३० विक्रमी वैसाख सुदी सप्तमी को गोयदाल में चौथे गुरु रामदासजी के घर में माता भानी जी के उदर से हुआ था।

आपके दो विवाह हुए थे। पहला मौड़गाँव के चन्दनदास खत्री की कन्या श्रीमती रामदेवीजी से हुआ। पहली स्त्री के स्वर्गवास हो जाने पर दूसरा विवाह कृष्णचन्द्र की पुत्री गङ्गादेवी के साथ सं० १६६४ में हुआ। गुरु हरगोविन्द जी का जन्म इसी देवी के गर्भ से हुआ था।

गुरु अर्जुनदेवजी की प्रथम स्त्री से कोई सन्तान नहीं थी। दूसरी से भी कई वर्षों तक सन्तान नहीं हुई। अन्त में गुरु हरगोविन्दजी का जन्म हुआ।

सिखों के सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ 'सूर्य प्रकाश' में लिखा है कि एक बार हरगोविन्द जी को शीतलादेवी का प्रकोप हुआ और उनकी माता गङ्गादेवीजी ने अमृतसर में लोहगढ़ दरवाजे के बाहर थोड़ी दूर पर शीतलादेवी की पूजा-अर्चना की। अनुमान है कि अमृतसर का दुर्ग्याना-तीर्थ उसके बाद ही विशेष प्रसिद्ध हुआ होगा, यद्यपि उसकी स्थापना उससे बहुत पहले ही हो चुकी थी। इसकी स्थापना या तो गुरु रामदास जी ने की होगी, या गुरु अर्जुनदेवजी ने; क्योंकि देवी-भक्त तो सभी गुरु थे।

गुरु अर्जुनदेवजी के बड़े भ्राता का नाम पृथ्वीचन्द्र था। वह अर्जुनदेवजी से सदैव ईर्ष्या रखता था और उनको हानि पहुँचाने की चेष्टा किया करता था। एक बार गुरु साहब के पास लाहौर से किसी सम्बन्धी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण आया। गुरु साहब ने पृथ्वीचन्द्र को जाने के लिए कहा, किन्तु उसे तो सदा यह सन्देह बना रहता था कि कहीं मेरे पीछे से गुरु साहब अर्जुनदेवजी को गद्दी न दे दें। अतः उसने जाना स्वीकार नहीं किया। गुरु साहब ने अर्जुन से जाने को कहा, उन्होंने आज्ञा शिरोधार्य कर ली। गुरुजी ने जाते समय यह कह दिया था कि जब तक हम बुलाएँ नहीं, तब तक वहीं रहना। वह विवाह में सम्मिलित हुए और तत्पश्चात् गुरु की आज्ञानुसार वहीं ठहर गए। अर्जुनदेवजी की पिताजी के दर्शन करने की लालसा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अन्त में उनसे न रहा गया और उन्होंने एक पत्र में निम्न स्वरचना पिताजी को लिख भेजी :

मेरा मन लोचै गुरु दरसनु ताईं।
बिलप करै चातिक की नाईं॥

पत्र पृथ्वीचन्द्र के हाथ लग गया और उसने उसे दबा लिया। गुरु

रामदासजी को इसकी कुछ भी जानकारी नहीं हुई। कई दिन बीत जाने पर भी पत्र का उत्तर नहीं आया, तब अर्जुनदेवजी व्याकुल हो उठे और उन्होंने एक दूसरा पत्र लिखा। किन्तु वह भी पृथ्वीचन्द्र ने उसी प्रकार दबा लिया। अन्त में तीसरा पत्र एक विश्वस्त अनुचर के द्वारा गुरु साहब के पास भिजवाया। गुरु साहब ने जब पत्र पढ़ा तो वे प्रेमवश गद्‌गद हो गए, किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि इससे पहले दो पत्र और लिखे गए थे, तब उन्होंने पृथ्वीचन्द्र को बुलाया और उसे धमकाकर उससे वे दो पत्र भी ले लिये। फिर तुरन्त ही उन्होंने दूत भेजकर गुरु अर्जुनदेवजी को बुलवाया। जब गुरु अर्जुनदेवजी आये तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उठकर उन्हें छाती से लगाया और प्रेमपूर्वक अपने पास बिठा लिया। तब से गुरु अर्जुनदेवजी सदा पिता के पास ही रहने लगे और समय पाकर अपनी विशेष योग्यता एवं प्रखर बुद्धि के कारण गुरु-गद्दी के अधिकारी हुए।

पृथ्वीचन्द्र ने एक-दो बार गुरु अर्जुनदेव को विष द्वारा मार देने का भी प्रयत्न किया था, पर सफल नहीं हो सका। उसने एक और भी पतित कर्म किया। उसने मुसलमानों को गुरु साहब के विरुद्ध भड़काया और उन्हें अनेक कष्ट दिलाये। गुरु साहब जब अमृतसर में आकर रहने लगे तो पृथ्वीचन्द्र को बुरा लगा। उसने अनेक उत्पात किये। तब गुरु साहब दुःखित होकर वहाँ से खारई आकर रहने लगे। यहाँ उन्होंने तरनतारन नामक तालाब खुदवाया। उसके बनने के लिए जो ईंटें आईं उन्हें पृथ्वीचन्द्र ने किसी सराय में लगवा दिया। गुरु-शिष्य को बड़ा दुःख हुआ। गुरु साहब ने कहा, "कुछ चिन्ता नहीं, ईंटें कम थीं, और ईंटों के साथ वापस होंगी।" अन्त में गुरु साहब की भविष्य-वाणी पूर्ण हुई। कुछ दिनों में अनावश्यक समझकर वह सराय तुड़वा दी गई और उसकी सारी ईंटें तरनतारन तालाब के काम आईं। पश्चात् महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र कुँवर नैनिहालसिंह ने एक बहुत ही रमणीय मन्दिर तालाब के पास बनवा दिया, जो दर्शनीय है।

गुरु अर्जुनदेवजी रामदासपुर से बड़ाली चले आए। वहाँ पर गुरु हरगोविन्द का जन्म हुआ। दुष्ट पृथ्वीचन्द्र ने बालक हरगोविन्द के प्राण लेने के अनेक यत्न किये, क्योंकि उसका भी एक पुत्र गुरु साहब के पास रहता था। उसको आशा थी कि वही गुरु-गद्दी का अधिकारी होगा। किन्तु इनके जन्म से पृथ्वीचन्द्र की ईर्ष्या भड़क उठी। उसने एक दिन किसी स्त्री के स्तनों को विष लगाकर गुरु-पुत्र को दूध पिलाने के लिए भेजा। किन्तु विष के तीव्र होने के कारण वह स्त्री बालक तक पहुँचने के पहले ही मृत्यु को प्राप्त हुई। एक बार पृथ्वीचन्द्र ने रसोइये को फुसलाकर गुरु साहब के भोजन में विष मिला देने का भी षड्यन्त्र रचा था। उसके प्रकट हो जाने के कारण सिख-समाज में पृथ्वीचन्द्र के विरुद्ध बड़ा क्षोभ फैला। अन्त में उसे वहाँ से अन्यत्र भाग जाना पड़ा।

अब गुरु साहब निश्चिन्त होकर नानक-धर्म के प्रचार-कार्य में पूर्ण शक्ति से लग गए। उन्होंने गुरु नानकदेव से लेकर गुरु रामदास तक के गुरुओं की वाणी भाई मोहनजी से प्राप्त करके सुप्रसिद्ध 'आदि ग्रन्थ' को संकलित किया। उन्होंने अपनी बनाई हुई रचना भी उसमें प्रविष्ट की। 'आदि ग्रन्थ' में गुरु-वचनों के अतिरिक्त कबीर, नामदेव, धन्ना, पियाजी और रामानन्द आदि प्रख्यात भक्तों के भजनों का संग्रह भी है। गुरु साहब की आज्ञा थी कि इस ग्रन्थ को सब सिख पढ़ें तथा तदनुसार अपने आचरण बनाएँ। सिख-सम्प्रदाय के गुरुओं की वाणी का पहले कोई संग्रह-ग्रन्थ नहीं था। 'आदि ग्रन्थ' के निर्माण हो जाने से एक भारी अभाव की पूर्ति हो गई।

गुरु साहब ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये। जिस अमृतसर नगर की स्थापना उनके पिता गुरु रामदासजी ने की थी, उसे खूब बढ़ाया तथा अमृतसरोवर के बीच में एक मन्दिर बनवाकर उस स्थान को एक परम सुन्दर तीर्थ के रूप में बदल दिया। अपना प्रधान निवास-स्थान भी वहीं नियत किया। उन्होंने तरनतारन नगर की स्थापना भी की। इसके बसाने का उद्देश्य यह था कि वह प्रदेश बलवान और भावुक

हिन्दुओं का वासस्थान है, जिससे कि उनका बल सिख-शक्ति को मिलता रहे ।

तीसरा कार्य उन्होंने यह किया कि अब तक आय चन्दे के द्वारा हुआ करती थी । किन्तु उन्होंने प्रान्त के २२ हिस्से करके प्रत्येक हिस्से के लिए एक-एक कर-अधिकारी नियुक्त कर दिया । वे अपने प्रान्तों की कर-निधि एकत्रित करके प्रतिवर्ष वैशाखी पर होने वाले विशाल दरबार में आकर गुरु साहब को भेंट करते थे । इस दरबार में दूर-दूर के प्रान्तों के लोग भी सम्मिलित हुआ करते थे ।

इसके अतिरिक्त गुरुजी ने एक-दो उल्लेखनीय कार्य और भी किये । एक बार शहज़ादा खुसरो अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह करके गुरुजी से सहायता की याचना करने आया । गुरुजी ने उसे धन से सहायता प्रदान की तथा उसके लिए विजय-कामना भी की । दूसरा कार्य यह किया कि लाहौर के दीवान चन्दूलाल की कन्या का नाता यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि जिस पुरुष ने अपने सुख-ऐश्वर्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ है और जिसमें न धार्मिकता है, न जातीयता, उससे हमारा कैसा सम्बन्ध । चन्दूलाल इस बात से बहुत क्रुद्ध हुआ । वह अपनी कन्या का सम्बन्ध गुरुजी के पुत्र से करना चाहता था । अब उसने गुरुजी के विरुद्ध बादशाह के कान भरने आरम्भ किये ।

बादशाह जहाँगीर एक तो खुसरो को सहायता देने के कारण पहले से ही गुरुजी पर अप्रसन्न था, उस पर चन्दू के बहकाने से तो वह भड़क उठा और गुरुजी के नाश के उपाय सोचने लगा । वह यह भी जानता था कि इस समय गुरुजी की शक्ति प्रबल तथा उनका संगठन दृढ़ है, तो भी उसने गुरुजी को बन्दी करने की आज्ञा दे दी ।

गुरु अर्जुनदेवजी बन्दी कर लिये गए । जब इस घटना का समाचार हिन्दू-समाज ने जाना, तो सर्वत्र समाज में क्षोभ की लहर फैल गई । दूर-दूर से हिन्दू-जनता लाहौर में आकर एकत्रित होने लगी । किन्तु गुरु के उपदेशों के प्रभाव से किसी के मन में हिंसा जागृत नहीं हुई । गुरु तो

अहिंसा के अवतार थे। गुरु साहब पर बादशाह ने दो लाख रुपया जुरमाना किया। गुरु साहब ने विनीत भाव से कहा, "मैं निर्दोष हूँ और न मेरे पास धन है कि जुरमाना चुका सकूँ।" किन्तु उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई और आप कोतवाल के सुपुर्द किये गए, जिसने आपको किले में बन्द कर दिया। निर्दयी कोतवाल ने उनको अनेक यातनाएँ दीं। गुरु अर्जनदेवजी को उबलते हुए पानी में बिठाया। पश्चात् एक बड़े-से चूल्हे पर एक बड़ा लोहा रखकर उस पर गुरुजी को बिठा दिया। नीचे से अग्नि प्रज्वलित करके ऊपर से गरम-गरम रेत फिंकवाया। इतने पर भी गुरुजी विचलित नहीं हुए, तब उसके अचम्भे का पारावार नहीं रहा। अन्त में उन्हें गाय की कच्ची खाल में मढ़ देने का उसने निश्चय किया।

गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दू थे और गौ-ब्राह्मण के लिए उनके हृदय में श्रद्धा-भक्ति थी। वह भला कब गाय की कच्ची खाल में मढ़ा जाना स्वीकार कर सकते थे। अतः उन्होंने एक उपाय सोच निकाला। आपने कहा कि मुझे रावी में स्नान कर लेने दो, फिर चाहे जो करना। आपको नदी-स्नान की आज्ञा मिल गई। उन्होंने नदी में प्रवेश किया और एक गोता लगाया, किन्तु तत्पश्चात् आप नदी में से लौटकर नहीं आये। नदी भी आपके पवित्र शरीर को अपनी गोद में लेकर कृतकृत्य हो गई और प्रेमवश हिलोर लेती हुई-सी बहने लगी। गुरु अर्जुनदेव के इस महान् बलिदान की गौरव-गाथा रावी नदी के जल की कल-कल ध्वनि में से अब भी निरन्तर सुनाई देती रहती है।

श्री गुरु अर्जुनदेवजी ४३ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग सिधारे। नदी में खोज करने पर भी आपका मृत शरीर नहीं मिला। आपने गुरु-गद्दी का अधिकार अपने सुपुत्र श्री गुरु हरगोविन्द जी को बन्दी होने से पहले ही दे दिया था।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी न केवल जन्म के ही कवि और दार्शनिक थे, किन्तु बड़े भारी राजनीतिज्ञ भी थे। आपके पास बड़े-बड़े मुसलमान फ़कीर आते और वेदान्त की शिक्षा प्राप्त करते थे। आप स्वभाव के बड़े

दयालु थे और अन्य गुरुओं की भाँति गौ-ब्राह्मण-प्रतिपालक और हिन्दुत्व से परिपूर्ण थे। सच तो यह है कि आप हिन्दुत्व के लिए जन्मे और हिन्दुत्व के लिए ही मरे।

: १० :

समुद्र-तल के जीव

(श्री देवीदत्त शुक्ल)

समुद्र का तल अन्धकारपूर्ण है। यह बहुत ठण्डा है, तो भी सुन्दर जीवधारियों से भरा हुआ है। कहीं-कहीं शाखाओं-सहित लम्बे-लम्बे तने भी खड़े हुए हैं। कोई-कोई १८ फीट तक ऊंचे हैं। उनका रंग पीला है। वे पौधे नहीं हैं, किन्तु एक प्रकार के जीवधारियों के समूह हैं। अन्धे और लाल रंग के केकड़े जैसे जीव उस विचित्र स्थान में इधर-उधर रेंगते रहते हैं। इस सूर्य-रहित देश में अनेक जीवधारियों के केवल आँखें ही नहीं हैं, किन्तु वे अपने भीतर की चमक से चमकती भी हैं। ये जीव छोटे-छोटे प्रकाश-मन्दिर-से हैं और लाल तथा पीली दमक प्रकट करते रहते हैं।

हमारे समुद्र-तट के धरातल से केवल बारह सौ गज नीचे वह देश स्थित है, जहाँ अनेक जीवधारी सरल और सुन्दर प्रकाश प्रकट किया करते हैं। वहाँ की मछलियाँ उन मछलियों से, जिन्हें हमारे मछुए उथले जल में पकड़ा करते हैं, प्रायः भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, वहाँ एक प्रकार की ऐसी मछली मिलती है जिसके सारे शरीर में दीपकों की एक पंक्ति होती है। एक और काली मछली होती है जिसके सिर से पूँछ तक लाल प्रकाश की दो पंक्तियाँ हैं, साथ ही उसकी पीठ पर तथा अगल-बगल सैकड़ों छोटे-छोटे दीपक होते हैं। इन प्रकाशमान जीवधारियों में सबसे

अधिक सुन्दर एक प्रकार का जीव है, जिसका आकार नक्षत्र जैसा है। इसके लम्बे-लम्बे हाथ होते हैं, इसका तीक्ष्ण प्रकाश हरे रंग का है, जो इसके मध्य में दमकता रहता है।

गहरे समुद्रों की मछलियों की आँखें विचित्र होती हैं। उसके तल-देश में रहने वाली कुछ मछलियों की आँखें जहाँ बहुत बड़ी होती हैं, वहाँ कुछ की बहुत ही छोटी होती हैं। कुछ की दृष्टि-शक्ति होती ही नहीं और वे अपना सारा जीवन अन्धकार में बिताती हैं।

जुगनू जब भयभीत होता है तब वह अपनी पूँछ का हरा प्रकाश बुझा देता है। इस प्रकार वह अपने शत्रु से बच निकलता है। बहुत सम्भव है कि समुद्र के तल-देश के इन प्रकाशमान जीवों में से अनेक को शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिए अपने दीपकों को बुझा देने की शक्ति प्राप्त हो। तब वे अन्धकार में रह जाते होंगे। उस दशा में उनके लिए इधर-उधर हट जाना तथा यह जान लेना कि हम कहाँ जा रहे हैं, आवश्यक होता होगा। इन मछलियों के डैने लम्बे होते हैं। इनके द्वारा वे पानी की गति से यह जान जाती हैं कि उनके आसपास कहाँ क्या हो रहा है। समुद्री धरातल के मीलों नीचे रहने वाले केकड़ों के भी ये अंग होते हैं।

यह ज्ञात नहीं होता है कि ये प्राणी पानी के इतने भारी दबाव के नीचे समुद्र-तल में कैसे जीवित रहते हैं। इस सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञात हो सका है वह यह है कि उथले समुद्रों की मछलियाँ पानी का भारी बोझ नहीं सहन कर सकतीं। परन्तु गहरे समुद्र की मछलियों की हड्डियाँ विचित्र प्रकार की होती हैं। वे पतली और मुलायम होती हैं और कुछ तो नसों जैसी होती हैं। सम्भवतः इनके कारण उनकी देह अधिक लचीली होती है, जो उनको सैकड़ों टन का बोझ सँभालने के योग्य बना देती है।

प्रश्न यह है कि उन जीवधारियों को समुद्र-तल में खाने को क्या मिलता होगा? यह तो स्पष्ट ही है कि वे केवल एक-दूसरे को खाकर

जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि तब तो बड़े-से-बड़े जीव ही अपने से छोटों को खाकर बच सकते थे, और बाद को वे भी भोजन के अभाव में भूखों मर जाते। वास्तव में सभी जीवों को जीवन की रक्षा के लिए पौधों की आवश्यकता है, परन्तु सूर्यहीन समुद्र-तल में पौधों के उगने की सम्भावना ही नहीं है।

इन जीवधारियों में कुछ तो छोटे-छोटे जीव हैं और कुछ पौधे हैं; परन्तु पौधे और जीव दोनों के बीच अनेक प्राणी इनमें हैं। गहरे समुद्र के प्राणी इन्हीं छोटे-छोटे अदृश्य पौधों पर अपना निर्वाह करते हैं। ये पानी के धरातल पर रहते हैं जहाँ सूर्य के प्रकाश से उनकी देह बढ़ती है। इनकी संख्या बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। जब ये मरते हैं तब इनके शव जाकर समुद्र-तल के देश में बैठ जाते हैं, जहाँ वे जीवों का भोजन बनते हैं।

: ११ :

नारंगी का छिलका

(माननीय बाबू श्रीप्रकाश)

'मेरे दादा की मृत्यु एक ऐसी दुर्घटना के कारण हुई जिसका प्रतिबन्ध सहज में हो सकता था। किसी ने सड़क पर लापरवाही से नारंगी का छिलका फक दिया था, उसी पर फिसलकर वे गिर गए। उनका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। गिरने से बड़ा धक्का लगा और वे फिर अच्छे नहीं हुए।'—सी० एफ० एण्ड्रूज की जीवनी।

नागरिकता बड़ी सरल वस्तु है, अगर हम केवल इस बात को सदा याद रखें कि दूसरों के साथ हम वैसा ही आचरण करें जैसी हम आशा

रखते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें। साधारण तौर से मनुष्य का यही भाव रहता है कि वह अपनी तात्कालिक सुविधा देखता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि उसकी लापरवाही का परिणाम दूसरों के लिए क्या होगा। जब हम अपने मकान में, सड़क पर या अन्य निजी या सार्वजनिक स्थान में जाते हैं या रेल पर सफ़र करते हैं तो हमारे सामने सदा अपने भाइयों की लापरवाही का नतीजा दीख पड़ता है जिसके कारण दूसरों की जान खतरे में डाल दी जाती है। नारंगी का छिलका तो बड़ी ही निर्दोष वस्तु मालूम पड़ती है और अपने स्थान पर बड़ा सुन्दर भी होता है, परन्तु वही छिलका यदि अविवेक के साथ अनुपयुक्त स्थान पर फेंक दिया जाय तो खासा भयानक हो जाता है।

अच्छा नागरिक सदा इसका विचार रखता है कि दूसरे को उसके कारण अनावश्यक असुविधा या क्षति न पहुँचे। भारत में सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारे घर सुव्यवस्थित हों। घरों में ही बच्चे पाले जाते हैं और वहीं उन्हें अच्छे और सच्चे नागरिक बनने की शिक्षा दी जा सकती है। माता-पिता बाल्यावस्था में जो छोटी-छोटी पर अत्यन्त आवश्यक बातों की शिक्षा देते हैं वे मन में जम जाती हैं और उनके जीवन का अंग हो जाती हैं। इसके सामने स्कूलों और कालिजों की शिक्षा, यहाँ तक कि आगे चलकर जीवन के कटु अनुभवों की भी शिक्षा, कोई चीज़ नहीं है। अगर हम अपने घरों को देखें तो यह पाते हैं कि वहाँ सदा सभी चीज़ें अस्त-व्यस्त रहती हैं। सब चीजें सब जगहों पर पड़ी हुई हैं और सभी काम सभी जगह लोग अपनी तात्कालिक सुविधा के अनुसार करते रहते हैं। इसी कारण फल और तरकारी के छिलके, कागज़ के टुकड़े आदि चारों तरफ बिखरे रहते हैं और झाड़ू को अपना काम किये देर नहीं होती कि सारा स्थान फिर गन्दा हो जाता है। जान-बूझकर हम किसी की हानि करना नहीं चाहते, पर हमें इसका खयाल ही नहीं होता कि हम कोई अनुचित कार्य कर रहे हैं, क्योंकि हमें किसी ने बतलाया ही नहीं कि क्या करना चाहिए। बच्चे, स्त्रियाँ, यहाँ तक कि

वयोवृद्ध पुरुष भी घरों को सदा अस्त-व्यस्त अवस्था में रखने में सहायक होते हैं ।

यदि हम विचार करें तो यह कितना सहल मालूम पड़ता है कि सब काम निर्धारित स्थानों में किया जाय और सब वस्तुएँ निर्धारित स्थानों में रखी जायँ । हमें जब किसी चीज़ की आवश्यकता होती है तो वह नहीं मिलती । कारण यह कि आवश्यकता के लिए हमने उसे पहले हटाया था, पर आलस्य के कारण काम हो जाने पर उसे फिर वापस अपने स्थान पर नहीं रख दिया । परिणाम यह होता है कि जब हमें उसकी फिर आवश्यकता होती है तो उसे सारे घर में खोजना पड़ता है । मौजे, जूते, सुई, डोरा चारों तरफ फेंके रहते हैं और ताली के गुच्छों की खोज तो किसी-न-किसी को रोज ही करते रहना पड़ता है । घर पर की लापरवाही के अभ्यास के कारण बाहर भी हम लापरवाह बने रहते हैं । सड़कों पर, स्टेशनों पर, यहाँ तक कि रेलगाड़ी के भीतर भी, हम अपनी खराब आदतों के भयंकर नतीजे देखते हैं । छोटी उम्र की आदत जन्म-भर बनी रहती है, बड़ी उम्र में भी वह हमें नहीं छोड़ती ।

क्या हमारे पाठकों ने केले और नारंगी के छिलके चारों तरफ पड़े हुए नहीं देखे हैं ? क्या ऐसा कभी नहीं हुआ है कि ज़रूरी काम से जब वे सड़क पर चले जा रहे हों या जल्दी में रेल पर चढ़ने के लिए प्लेट-फार्म पर दौड़े हों तो इन पर फिसलकर गिर पड़े हों ? अगर उनका ऐसा अनुभव है तो क्या उन्होंने स्वयं छिलके ऐसी जगहों पर नहीं फेंके हैं जहाँ फेंके नहीं जाने चाहिएँ थे ? क्या उन्होंने सदा इसका विचार रखा है कि घरों में इन्हें अलग टोकरी में रखें, सड़कों पर इन्हें कूड़े की बाल्टियों में डालें और रेल में खिड़की के बाहर फेंकें ? क्या कभी नहीं हुआ है कि जब वे रेल पर चढ़े हों तो वहाँ पर व्यर्थ का कूड़ा-करकट पाकर उन्हें बड़ा क्रोध आया हो और उन्होंने उन मुसाफिरों को मन-ही-मन खूब कोसा हो जो उस डिब्बे में पहले चढ़े थे और जिन चीज़ों को बाहर फेंक देना चाहिए था उन्हें डिब्बे में ही छोड़कर चल दिए थे ? क्या उन्होंने खुद

इसका विचार रखा कि अपने इसी प्रकार के आचरण से आगे आने वाले मुसाफ़िरों को कोसने का मौका न दें ? उन्होंने उस कूड़े-करकट को कम किया या स्वयं भी उसकी वृद्धि में सहायक हुए ? पाठक-गण, स्मरण रखिये, अपने-अपने स्थान में हर चीज़ ठीक है, अस्थान में वही गन्दगी है। हमें वही मिलेगा जिसके हम योग्य है, और सार्वजनिक अधिकारियों की तरफ से भी सफाई आदि का उन्हीं स्थानों में अधिक प्रबन्ध रखा जायगा जहाँ के रहने वाले उस पर जोर देते हैं, और खुद साफ़ रहते हैं। जिन्हें गन्दगी गन्दगी ही नहीं मालूम पड़ती, जो खुद साफ नहीं रहते, उनके यहाँ सफाई कोई नहीं करता। जैसा मैंने पहले ही कहा था, नागरिकता बड़ी छोटी और सहल-सी चीज़ है और यदि हमें यह सदा स्मरण रहे कि छिलके, काग़ज़ आदि हमें ठीक-ठीक स्थानों पर रखने चाहिएँ तो हमने नागरिक शास्त्र के प्रथम अध्याय की अच्छी और उपयोगी शिक्षा प्राप्त कर ली है और हम अच्छे नागरिक बनने अर्थात् सच्चा और स्थायी स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। वास्तव में सच्चा नागरिक ही सच्चा देश-भक्त है।

: १२ :

कस्तूरबा : मेरी दृष्टि में

(राष्ट्रपिता गांधी)

: १ :

यह लिखते हुए मेरे हृदय को बड़ी व्यथा होती है कि तेरह वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ। आज मैं जब बारह-तेरह वर्ष के बच्चों को देखता हूँ और अपने विवाह का स्मरण हो आता है, तब मुझे अपने पर

तरस आने लगता है; और उन बच्चों को इस बात के लिए बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी दुर्गति से अब तक बचे हुए हैं। तेरह साल की उम्र में हुए मेरे इस विवाह के समर्थन में एक भी नैतिक दलील मेरे दिमाग में नहीं आ सकती।

पाठक यह न समझें कि मैं सगाई की बात लिख रहा हूँ। सगाई का तो अर्थ होता है माँ-बाप के द्वारा किया हुआ दो लड़के-लड़कियों के विवाह का ठहराव—वाग्दान। सगाई टूट भी सकती है। सगाई हो जाने पर यदि लड़का मर जाय तो उससे कन्या विधवा नहीं होती। सगाई के मामले में वर-कन्या की कोई पूछ नहीं होती। दोनों को खबर हुए बिना भी सगाई हो सकती है। मेरी एक-एक करके तीन सगाइयाँ हुईं। किन्तु मुझे कुछ पता नहीं कि ये कब हो गईं। मुझसे कहा गया कि एक-एक करके दो कन्याएँ मर गईं, तब मैं जान पाया कि मेरी तीन सगाइयाँ हुईं। कुछ ऐसा याद पड़ता है कि तीसरी सगाई सातेक साल की उम्र में हुई होगी। पर मुझे कुछ याद नहीं आता कि सगाई के समय मुझे उसकी खबर की गई हो। लेकिन विवाह में तो वर-कन्या की उपस्थिति आवश्यक होती है; उसमें धार्मिक विधि-विधान होते हैं। अतः यहाँ मैं सगाई की नहीं, अपने विवाह की बात कर रहा हूँ। विवाह का स्मरण तो मुझे अच्छी तरह है।

जिन दिनों मेरा विवाह हुआ, छोटे-छोटे निबन्ध—पैसे-पैसे या पाई-पाई के, सो याद नहीं पड़ता—छपा करते थे। इनमें दाम्पत्य-प्रेम, मित-व्ययिता, बाल-विवाह इत्यादि विषयों की चर्चा रहा करती थी। इनमें से कोई-कोई निबन्ध मेरे हाथ पड़ता और उसे मैं पढ़ जाता। शुरू से यह मेरी आदत रही कि जो बात पढ़ने में अच्छी नहीं लगती उसे भूल जाता, और जो अच्छी लगती उसके अनुसार आचरण करता। यह पढ़ा कि एक-पत्नी-व्रत का पालन करना पति का धर्म है। बस, यह मेरे हृदय में अंकित हो गया। सत्य की लगन तो थी ही, इसलिए पत्नी को धोखा या भुलावा देने का तो अवसर ही न था।

परन्तु इन सद्विचारों का एक बुरा परिणाम निकला। 'यदि मैं एक-पत्नीव्रत का पालन करता हूँ, तो मेरी पत्नी को भी एक-पतिव्रत का पालन करना चाहिए।' इस विचार से मैं असहिष्णु-ईर्ष्यालु पति बन गया। फिर 'पालन करना चाहिए' से 'पालन करवाना चाहिए' इस विचार तक जा पहुँचा। और यदि पालन करवाना हो तो फिर मुझे पत्नी की चौकीदारी करनी चाहिए। पत्नी की पवित्रता पर तो सन्देह करने का कोई कारण न था; परन्तु ईर्ष्या कहीं कारण देखने जाती है? मैंने कहा—"पत्नी हमेशा कहाँ-कहाँ जाती है, यह जानना मेरे लिए जरूरी है, मेरी इजाजत लिये बिना वह कहीं नहीं जा सकती।" मेरा यह भाव मेरे और उनके बीच दुःखद झगड़े का मूल बन बैठा। बिना इजाजत के कहीं न जा पाना तो एक तरह की कैद ही हो गई। परन्तु कस्तूरबा ऐसी मिट्टी की न बनी थीं, जो ऐसी कैद को बरदाश्त करतीं। जहाँ जी चाहे, मुझसे बिना पूछे जरूर चली जातीं। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें दबाता त्यों-त्यों वह अधिक आज़ादी लेतीं और त्यों-ही-त्यों मैं और बिगड़ता। इस कारण हम बाल-दम्पति में अबोला रहना एक मामूली बात हो गई। कस्तूरबा जो आजादी लिया करतीं उसे मैं बिलकुल निर्दोष मानता हूँ। एक बालिका, जिसके मन में कोई पाप नहीं है, देव-दर्शन को जाने के लिए अथवा किसी से मिलने जाने के लिए क्यों ऐसा दबाव सहन करने लगी? यदि मैं उस पर दबाव रखूँ तो फिर वह मुझ पर क्यों न रखे? पर यह बात तो अब समझ में आती है। उस समय तो मुझे पति-देव की सत्ता सिद्ध करनी थी।

इससे पाठक यह न समझें कि हमारे इस गार्हस्थ्य-जीवन में कहीं मिठास था ही नहीं। मेरी इस वक्रता का मूल था प्रेम। मैं अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मेरे मन में एकमात्र यही भाव रहता था कि मेरी पत्नी स्वच्छ हो, स्वच्छ रहे, मैं सीखूँ सो सीखे, मैं पढ़ूँ सो पढ़े और हम दोनों एक-मन दो-तन बनकर रहें।

मुझे खयाल नहीं पड़ता कि कस्तूरबा के भी मन में ऐसा भाव रहा हो। वह निरक्षर थीं। स्वभाव उनका सरल और स्वतन्त्र था। वह

परिश्रमी भी थीं, पर मेरे साथ कम बोला करतीं। अपने अज्ञान पर उन्हें असन्तोष न था। अपने बचपन में मैंने कभी उनकी ऐसी इच्छा नहीं देखी कि 'वह पढ़ते हैं तो मैं भी पढ़ूँ।'

मैं ऊपर कह आया हूँ कि कस्तूरबा निरक्षर थीं। उन्हें पढ़ाने की मुझे बड़ी चाह थी। एक तो मुझे उनकी मरज़ी के खिलाफ पढ़ाना था, फिर रात में ही ऐसा मौका मिल सकता था। बड़ों के सामने तो पत्नी की तरफ देख तक नहीं सकते, बात करना तो दूर रहा। उस समय काठियावाड़ में घूँघट निकालने का निरर्थक और जंगली रिवाज़ था जो आज भी थोड़ा-बहुत बाकी है। इस कारण पढ़ाने के अवसर भी मेरे प्रतिकूल थे। इसलिए, मुझे कहना होगा कि युवावस्था में पढ़ाने की जितनी कोशिशें मैंने कीं वे सब प्रायः बेकार गईं और जब मैं निद्रा से जागा तब तो सार्वजनिक जीवन में पड़ चुका था। इस कारण अधिक समय देने योग्य मेरी स्थिति नहीं रह गई थी। शिक्षक रखकर पढ़ाने के मेरे यत्न भी विफल हुए। इसके फलस्वरूप कस्तूरबा मामूली चिट्ठी-पत्री व गुजराती लिखने-पढ़ने से अधिक साक्षर न होने पाईं। यदि मेरा प्रेम दूषित न हुआ होता, तो मैं मानता हूँ आज वह विदूषी हो गई होतीं। उनके पढ़ने के आलस्य पर मैं विजय प्राप्त कर पाता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि शुद्ध प्रेम के लिए दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं।

: २ :

जब मैं नेटाल में था तो वहाँ के हिन्दुस्तानियों ने मुझे प्रेमामृत से नहला डाला। स्थान-स्थान पर अभिनन्दन-पत्र दिये गए और हर एक जगह कीमती चीज़ें भेंट की गईं।

१८९६ में जब मैं देश आया था, तब भी भेंटे मिली थीं, पर इस बार की भेंटों और सभाओं के दृश्यों से मैं घबराया। भेंट में सोने-चाँदी की चीजें तो थीं ही, पर हीरे की चीजें भी थीं।

इन सब चीज़ों को स्वीकार करने का मुझे क्या अधिकार हो सकता

है ? यदि मैं इन्हें मंजूर कर लूँ तो फिर अपने मन को यह कहकर कैसे मना सकता हूँ कि मैं पैसा लेकर लोगों की सेवा नहीं करता था ?

फिर उन भेंटों में एक हज़ार रुपये का एक हार कस्तूरबा के लिए था। मगर उसे जो चीज मिली वह भी थी तो मेरी ही सेवा के उपलक्ष्य में; अतएव उसे पृथक् नहीं मान सकते थे।

जिस शाम को इनमें से मुख्य-मुख्य भेंटें मिलीं, वह रात मैंने एक पागल की तरह जागकर काटी। कमरे में यहाँ से वहाँ टहलता रहा, परन्तु गुत्थी किसी तरह सुलझती न थी। सैकड़ों रुपयों की भेंटें न लेना भारी पड़ रहा था, पर ले लेना उससे भी भारी मालूम होता था।

मैं चाहे इन भेंटों को पचा भी सकता, पर मेरे बालक और पत्नी ? उन्हें तालीम तो सेवा की मिल रही थी। सेवा का दाम नहीं लिया जा सकता था, यह हमेशा समझाया जाता था। घर में कीमती ज़ेवर आदि मैं नहीं रखता था। सादगी बढ़ती जाती थी। ऐसी अवस्था में सोने की घड़ियाँ कौन रखेगा ? सोने की कण्ठी और हीरे की अँगूठियाँ कौन पहनेगा ? गहनों का मोह छोड़ने के लिए मैं उस समय भी औरों से कहता रहता था। अब इन गहनों और जवाहिरात को लेकर मैं क्या करूँगा ?

मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि वे चीजें मैं हरगिज नहीं रख सकता। पारसी रुस्तमजी इत्यादि को इन गहनों का ट्रस्टी बनाकर उनके नाम एक चिट्ठी तैयार की और सुबह स्त्री-पुत्रादि से सलाह करके अपना बोझ हल्का करने का निश्चय किया।

मैं जानता था कि धर्मपत्नी को समझाना मुश्किल पड़ेगा। मुझे विश्वास था कि बालकों को समझाने में ज़रा भी दिक्कत पेश न आएगी, अतएव उन्हें वकील बनाने का विचार किया।

बच्चे तो तुरन्त समझ गए। वे बोले, "हमें इन गहनों से कुछ मतलब नहीं; ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिएँ। और यदि जरूरत होगी तो क्या हम खुद नहीं बना सकेंगे ?"

मैं प्रसन्न हुआ। "तो तुम बा को समझाओगे न ?" मैंने पूछा।

"जरूर-जरूर। वह कहाँ इन गहनों को पहनने चली हैं ? रखना चाहेंगी भी तो हमारे ही लिए न ? पर जब हमें ही इनकी जरूरत नहीं है, तब फिर वह क्यों ज़िद करने लगीं ?"

परन्तु काम अन्दाज़ से ज्यादा मुश्किल साबित हुआ।

"तुम्हें चाहे जरूरत न हो और लड़कों को भी न हो। बच्चों का क्या ? जैसा समझा दें समझ जाते हैं। मुझे न पहनने दो, पर मेरी बहुओं को तो जरूरत होगी। और कौन कह सकता है कि कल क्या होगा ? जो चीजें लोगों ने इतने प्रेम से दी हैं उन्हें वापस लौटाना ठीक नहीं।" इस प्रकार वाग्धारा शुरू हुई और उसके साथ अश्रु-धारा आ मिली। लड़के दृढ़ रहे, और मैं भला क्यों डिगने लगा !

मैंने धीरे से कहा—"पहले लड़की की शादी तो हो लेने दो। हम बचपन में तो इनके विवाह करना चाहते ही नहीं हैं। बड़े होने पर जो इनका जी चाहे सो करें। फिर हमें क्या गहनों-कपड़ों की शौकीन बहुएँ खोजनी हैं ? फिर भी अगर कुछ बनवाना ही होगा तो मैं कहाँ चला गया हूँ ?"

"हाँ, जानती हूँ तुमको। वही हो न, जिन्होंने मेरे भी गहने उतरवा लिये हैं ! जब मुझे ही नहीं पहनने देते हो तो मेरी बहुओं को जरूर ला दोगे ! लड़कों को तो अभी से वैरागी बना रहे हो। इन गहनों को मैं वापस नहीं देने दूँगी। और फिर मेरे हार पर तुम्हारा क्या हक है ?"

"पर यह हार तुम्हारी सेवा की खातिर मिला है या मेरी ?" मैंने पूछा।

"जैसा भी हो, तुम्हारी सेवा में क्या मेरी सेवा नहीं है ? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या वह सेवा नहीं है ? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरों को घर में रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नहीं ?"

ये सब बाण तीखे थे। कितने ही तो मुझे चुभ रहे थे। पर गहने वापस लौटाने का मैं निश्चय कर चुका था। अन्त को बहुतेरी बातों में मैं जैसे-तैसे सम्मति प्राप्त कर सका।

इस बात के लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। आगे चलकर कस्तूरबा को भी उसका और औचित्य जँचने लगा। इस तरह हम अपने जीवन में बहुतेरे लालचों से बच गए हैं।

: ३ :

उन दिनों मैं डरबन में वकालत करता था, उस समय बहुत बार मेरे कारकुन मेरे साथ ही रहते थे। हिन्दू और ईसाई होते थे; अथवा प्रान्तों के हिसाब से कहें तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषय में मेरे मन में भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिलकुल घर के ही जैसा समझता और उसमें मेरी धर्मपत्नी की ओर से यदि कोई विघ्न उपस्थित होता तो मैं उससे लड़ता था। मेरा एक कारकुन ईसाई था। उसके माँ-बाप पंचम जाति के थे। हमारे घर की बनावट पश्चिमी ढंग की थी। इस कारण कमरे में मोरी नहीं होती थी; और न होनी चाहिए थी, ऐसा मेरा मत है। इस कारण कमरों में मोरियों की जगह पेशाब के लिए एक अलग बरतन होता था। उसे उठाकर रखने का काम हम दोनों—दम्पति का था, नौकरों का नहीं। हाँ, जो कारकुन लोग अपने को हमारा कुटुम्बी-सा मानने लगते थे वे तो खुद ही उसे साफ कर भी डालते थे, लेकिन पंचम जाति में जन्मा यह कारकुन नया था। उसका बरतन हमें ही उठाकर साफ करना चाहिए था। और बरतन तो कस्तूरबा उठाकर साफ कर देतीं, लेकिन इन भाई का बरतन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ, इससे हम दोनों में झगड़ा मचा। यदि मैं उठाता हूँ तो उसे अच्छा नहीं मालूम होता था और खुद उसके लिए उठाना कठिन था। फिर भी आँखों से मोती की बूँदें टपक रही हैं, एक हाथ में बरतन लिये अपनी लाल-लाल आँखों से उलहना

देती हुईं कस्तूरबा सीढ़ियों से उतर रही हैं।

परन्तु मैं जैसा सहृदय और प्रेमी पति था वैसा ही निष्ठुर और कठोर भी था। मैं अपने को उसका शिक्षक मानता था। इस अपने अन्ध-प्रेम के अधीन हो मैं उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बरतन उठा ले जाने-भर से मुझे सन्तोष न हुआ, मैंने यह भी चाहा कि वह हँसते और हरखते हुए उसे ले जाय। इसलिए मैंने उसे डाँटा-डपटा भी। मैंने उत्तेजित होकर कहा—"देखो, यह बखेड़ा मेरे घर में नहीं चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबा को तीर की तरह लगा। उसने धधकते दिल से कहा—"तो लो, रखो यह अपना घर, मैं चली!"

उस समय मैं ईश्वर को भूल गया था। दया का लेश-मात्र मेरे हृदय में न रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ी के सामने ही बाहर जाने का दरवाजा था। मैं उस दीन अबला का हाथ पकड़कर दरवाजे तक खींचकर ले गया। दरवाजा आधा खोला कि आँखों में गंगा-यमुना बहाती हुई कस्तूरबा बोलीं—

"तुम्हें तो कुछ शर्म है नहीं, पर मुझे है। ज़रा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर आखिर जाऊँ कहाँ? माँ-बाप भी यहाँ नहीं कि उनके पास चली जाऊँ। मैं ठहरी स्त्री-जाति, इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सहनी ही पड़ेगी। अब ज़रा शर्म करो और दरवाजा बन्द कर लो; कोई देख लेगा तो दोनों की फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा तो सुर्ख बनाये रखा, पर मन में शरमा जरूर गया। दरवाजा बन्द कर दिया। जब कि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी तब मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था! इस तरह हमारे आपस में लड़ाई-झगड़े कई बार हुए हैं, परन्तु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उनमें पत्नी ने अपनी अद्भुत सहनशीलता द्वारा मुझ पर विजय प्राप्त की है।

कस्तूरबा तीन बार सख्त बीमार हुई और तीनों में वह घरेलू इलाज से बच गई। पहली घटना तो तब की है जब दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था। उसको बार-बार तकलीफ हो जाया करती थी। एक डॉक्टर मित्र ने नश्तर लगवाने की सलाह दी थी। बड़ी आनाकानी के बाद वह नश्तर के लिए राजी हुई। शरीर बहुत क्षीण हो गया था। डॉक्टर ने बिना बेहोश किये ही नश्तर लगाया। उस समय उसे दर्द तो बहुत हो रहा था, पर जिस धीरज से कस्तूरबा ने उसे सहन किया उसे देखकर मैं तो दाँतों-तले अंगुली देने लगा। नश्तर अच्छी तरह लग गया। डॉक्टर और उसकी धर्मपत्नी ने कस्तूरबा की बहुत अच्छी तरह शुश्रूषा की।

यह घटना डरबन की है। दो या तीन दिन बाद डॉक्टर ने मुझे निश्चिन्त होकर जोहान्सबर्ग जाने की छुट्टी दे दी। मैं चला भी गया, पर थोड़े ही दिन में समाचार मिले कि कस्तूरबा का शरीर बिलकुल सिमटता नहीं है और वह बिछौने से उठ-बैठ भी नहीं सकतीं। एक बार बेहोश भी हो गई थीं। डॉक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना कस्तूरबा को शराब या माँस—दवा में अथवा भोजन में—नहीं दिया जा सकता था। सो उन्होंने मुझे जोहान्सबर्ग टेलीफोन किया—

"आपकी पत्नी को मैं मांस का शोरबा और 'बीफ टी' देने की जरूरत समझता हूँ। मुझे इजाजत दीजिए।"

मैंने जवाब दिया, "मैं तो इजाजत नहीं दे सकता। परन्तु कस्तूरबा आज़ाद है। उसकी हालत पूछने लायक हो तो पूछ देखिए और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।"

"बीमार से मैं ऐसी बातें नहीं पूछना चाहता। आप खुद यहाँ आ जाइए। जो चीजें मैं बताता हूँ उनके खाने की इजाजत यदि आप न दें तो मैं आपकी पत्नी की जिन्दगी के लिए जिम्मेदार नहीं हूँ।"

यह सुनकर मैं उसी दिन डरबन रवाना हुआ। डॉक्टर से मिलने

पर उन्होंने कहा—"मैंने तो शोरबा पिलाकर आपको टेलीफोन किया था।"

मैंने कहा—"डॉक्टर, यह तो विश्वासघात है।"

"इलाज करते वक्त मैं दगा-वगा कुछ नहीं समझता। हम डॉक्टर लोग ऐसे समय बीमार को व उसके रिश्तेदारों को धोखा देना पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो है, जिस तरह हो सके रोगी को बचाना।" डॉक्टर ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, पर मैंने शान्ति धारण की। डॉक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उनका और उनकी पत्नी का मुझ पर बड़ा अहसान था, पर मैं उनके व्यवहार को बरदाश्त करने के लिए तैयार न था।

"डॉक्टर, अब साफ-साफ बातें कर लीजिए। बताइए, आप क्या करना चाहते हैं? अपन पत्नी को बिना उसकी इच्छा के मांस नहीं देने दूँगा; उसके न लेने से यदि वह मरती हो तो इसे सहन करने के लिए मैं तैयार हूँ।"

डॉक्टर बोले—"आपका यह सिद्धान्त मेरे घर नहीं चल सकता। मैं तो आपसे कहता हूँ कि आपकी पत्नी जब तक मेरे यहाँ हैं तब तक मैं मांस, अथवा जो कुछ देना मुनासिब समझूँगा, जरूर दूँगा। अगर आपको यह मंजूर नहीं है तो आप अपनी पत्नी को यहाँ से ले जाइए। अपने ही घर में मैं इस तरह उन्हें नहीं मरने दूँगा।"

"तो क्या आपका यह मतलब है कि मैं पत्नी को अभी ले जाऊँ?"

"मैं कहाँ कहता हूँ कि ले जाओ। मैं तो यह कहता हूँ कि मुझ पर कोई शर्त न लादो तो हम दोनों से इनकी जितनी सेवा हो सकेगी करेंगे और आप आराम से जाइए। जो यह सीधी-सी बात समझ में न आती हो तो मुझे मजबूरी से कहना होगा कि आप अपनी पत्नी को मेरे घर से ले जाइए।"

मेरा खयाल है कि मेरा एक लड़का उस समय मेरे साथ था। उससे मैंने पूछा तो उसने कहा—"हाँ, आपका कहना ठीक है। बा को मांस कैसे दे सकते हैं?"

फिर भी मैं कस्तूरबा के पास गया। वह बहुत कमजोर हो गई थीं। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुखदायी था। पर अपना धर्म समझकर मैंने ऊपर की बातचीत उसे थोड़े में समझा दी। उसने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—"मैं माँस का शोरबा नहीं लूँगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती। आपकी गोदी में मैं मर जाऊँ तो परवाह नहीं, पर अपनी देह को मैं भ्रष्ट नहीं होने दूँगी।"

मैंने उसे बहुतेरा समझाया और कहा कि तुम मेरे विचारों के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं हो। मैंने उसे यह भी बता दिया कि कितने ही अपने परिचित हिन्दू भी दवा के लिए शराब और मांस लेने में परहेज नहीं करते। पर वह अपनी बात से बिलकुल न डिगीं और मुझसे कहा—"मुझे यहाँ से ले चलो।"

यह देखकर मैं बड़ा खुश हुआ, किन्तु ले जाते हुए बड़ी चिन्ता हुई। पर मैंने तो निश्चय कर ही डाला और डॉक्टर को भी पत्नी का निश्चय सुना दिया।

वह बिगड़कर बोले – "आप तो बड़े घातक पति मालूम होते हैं। ऐसी नाजुक हालत में उस बेचारी से ऐसी बात करते हुए आपको शरम नहीं मालूम हुई? मैं कहता हूँ कि आपकी पत्नी की हालत यहाँ से ले जाने लायक नहीं है। उनके शरीर की हालत ऐसी नहीं है कि ज़रा भी धक्का सहन कर सके। रास्ते ही में दम निकल जाय तो ताज्जुब नहीं। फिर भी आप हठधर्मी से न मानें तो आप जानें। यदि शोरबा न देने दें तो एक रात भी उन्हें अपने घर में रखने की जोखिम मैं नहीं लेता।"

रिमझिम-रिमझिम मेंह बरस रहा था। स्टेशन दूर था। डरबन से फिनिक्स तक रेल के रास्ते और फिनिक्स से लगभग ढाई मील तक पैदल जाना था। खतरा पूरा-पूरा था, पर मैंने यही सोच लिया कि ईश्वर सब तरह मदद करेगा। पहले एक आदमी को फिनिक्स भेज दिया। फिनिक्स में हमारे यहाँ एक हैमक था; हैमक कहते हैं जालीदार कपड़े की झोली अथवा पालने को। उसके सिरों को बाँस से बाँध देने पर बीमार

उसमें आराम से झूला करता है। मैंने वेस्ट को कहलाया कि वह हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक बोतल गरम पानी और छः आदमियों को लेकर फिनिक्स स्टेशन पर आ जायँ।

जब दूसरी ट्रेन चलने का समय हुआ, तब मैंने रिक्शा मँगाई और उस भयंकर स्थिति में पत्नी को लेकर चल दिया।

पत्नी को हिम्मत दिलाने की मुझे जरूरत नहीं पड़ी, उल्टे मुझीको हिम्मत दिलाते हुए उसने कहा—"मुझे कुछ नुकसान न होगा, आप चिन्ता न करें।"

इस ठठरी में वज़न तो कुछ रह ही नहीं गया था। खाना पेट में जाता ही न था। ट्रेन के डिब्बे तक पहुँचने के लिए स्टेशन के लम्बे-चौड़े प्लेटफार्म पर दूर तक चलकर जाना था, क्योंकि रिक्शा वहाँ तक पहुँच नहीं सकती थी। मैं उसे सहारा देकर डिब्बे तक ले गया। फिनिक्स स्टेशन पर तो वह झोली आ गई थी; उसमें हम रोगी को आराम से घर तक ले गए। वहाँ केवल पानी के उपचार से धीरे-धीरे उसका शरीर बनने लगा। फिनिक्स पहुँचने के दो-तीन दिन बाद एक स्वामीजी हमारे यहाँ पधारे। जब हमारी हठधर्मी की कथा उन्होंने सुनी तो हम पर उनको बड़ा तरस आया और वह हम दोनों को समझाने लगे।

मुझे जहाँ तक याद आता है, मणिलाल और रामदास भी उस समय मौजूद थे। स्वामीजी ने मांसाहार की निर्दोषता पर एक व्याख्यान झाड़ा, मनुस्मृति के श्लोक सुनाये। पत्नी के सामने जो इसकी बहस उन्होंने छेड़ी यह मुझे अच्छा न मालूम हुआ, परन्तु शिष्टाचार की खातिर मैंने उसमें दखल न दिया। मुझे मांसाहार के समर्थन में मनुस्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता न थी। उनका पता मुझे था। मैं यह भी जानता था कि ऐसे भी हैं जो उन्हें प्रक्षिप्त समझते हैं। यदि वे प्रक्षिप्त न हों तो भी अन्नाहार-सम्बन्धी मेरे विचार स्वतन्त्र रूप से बन चुके थे। पर कस्तूरबा की तो श्रद्धा ही काम कर रही थी, वह बेचारी शास्त्रों के प्रमाणों को क्या जानती? उसके नजदीक तो परम्परागत रूढ़ि ही धर्म

थी। लड़कों को अपने पिता के धर्म पर विश्वास था, इससे वे स्वामीजी के साथ विनोद करते जाते थे। अन्त को कस्तूरबा ने यह कहकर इस बहस को बन्द कर दिया—

"स्वामीजी, आप कुछ भी कहिए, मैं मांस का शोरबा खाकर अच्छी होना नहीं चाहती। अब बड़ी दया होगी, अगर आप मेरा सिर न खपाएँ। मैंने तो अपना निश्चय आपसे कह दिया। अब और बातें रह गई हों, तो आप इन लड़कों के बाप से जाकर कीजिएगा।"

नश्तर लगाने के बाद यद्यपि कस्तूरबा की तकलीफ कुछ समय के लिए बन्द हो गई थी, तथापि बाद को वह फिर जारी हो गई। अब की वह किसी तरह मिटाये न मिटी। पानी के इलाज बेकार साबित हुए। मेरे इन उपचारों पर पत्नी की बहुत श्रद्धा न थी, पर साथ ही तिरस्कार भी न था। दूसरा इलाज करने का भी उसे आग्रह न था; इसलिए जब मेरे दूसरे उपचारों में सफलता न मिली, तब मैंने उसको समझाया कि दाल और नमक छोड़ दो। मैंने उसे समझाने की हद कर दी, अपनी बात के समर्थन में कुछ साहित्य भी पढ़कर सुनाया, पर वह नहीं मानती थीं। अन्त को उसने झुँझलाकर कहा—"दाल और नमक छोड़ने के लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।"

इस जवाब को सुनकर एक ओर जहाँ मुझे दुःख हुआ वहाँ दूसरी ओर हर्ष भी हुआ, क्योंकि इससे मुझे अपने प्रेम का परिचय देने का अवसर मिला। उस हर्ष से मैंने तुरन्त कहा, "तुम्हारा खयाल गलत है, मैं यदि बीमार होऊँ और मुझे यदि वैद्य इन चीजों को छोड़ने के लिए कहें तो जरूर छोड़ दूँ। पर ऐसा क्यों? लो, तुम्हारे लिए मैं आज ही से दाल और नमक एक साल तक छोड़े देता हूँ। तुम छोड़ो या न छोड़ो, मैंने तो छोड़ दिया।"

यह देखकर पत्नी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी—"माफ करो, आपका मिज़ाज जानते हुए भी यह बात मेरे मुँह से निकल गई। अब मैं तो दाल और नमक न खाऊँगी, पर आप अपना वचन वापस ले

लीजिए। यह तो मुझे भारी सज़ा दे दी।"

मैंने कहा—"तुम दाल और नमक छोड़ दो तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ ही होगा, परन्तु मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह नहीं टूट सकती। मुझे भी उससे लाभ ही होगा। हर किसी निमित्त से मनुष्य यदि संयम का पालन करता है तो इससे उसे लाभ ही होता है। इसलिए तुम इस बात पर ज़ोर न दो; क्योंकि इससे मुझे भी अपनी आज़माइश कर लेने का मौका मिलेगा और तुमने जो इनको छोड़ने का निश्चय किया है, उस पर दृढ़ रहने में भी तुम्हें मदद मिलेगी।" इतना कहने के बाद तो मुझे मनाने की आवश्यकता रह नहीं गई थी।

"आप तो बड़े हठी हैं, किसी का कहा मानना आपने सीखा ही नहीं," यह कहकर वह आँसू बहाती हुई चुप हो रहीं।

इसके बाद तो कस्तूरबा का स्वास्थ्य खूब सँभलने लगा। अब यह नमक और दाल के त्याग का फल है, या उस त्याग से हुए भोजन के छोटे-बड़े परिवर्तनों का फल था, या उसके बाद दूसरे नियमों का पालन कराने की मेरी जागरूकता का फल था, या इस घटना के कारण जो मानसिक उल्लास हुआ उसका फल था, यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु यह बात जरूर हुई कि कस्तूरबा का सूखा शरीर फिर पनपने लगा। सब रोग दूर हो गए और 'वैद्यराज' के नाम से मेरी साख कुछ बढ़ गई।

: १३ :

पंजाब-केसरी

(श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन')

पंजाब-केसरी लालाजी का स्मरण आते ही एक मझोले कद का गठा हुआ पंजाबी आँखों के सामने झूलने लगता है—वह चित्र जिस पर खून के अक्षरों में अंकित है, "मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी।"

वह पंजाबी प्रकृति के प्रतीक थे। सरलता, दयालुता, जोश और शहादत की उद्वेलित करने वाली भावुकता,सभी रंग-विरंगी कुसुमावलियों का एक मोहक गुलदस्ता था उनका जीवन; और इसीलिए उनकी जीवन-धारा एक निश्चित मार्ग पर प्रवाहित होती नहीं दिखाई पड़ी। उनकी जीवन-धारा गंगा की नाईं रेवा की धारा थी। वह एक लोकप्रिय नायक थे, पथ-प्रदर्शक नेता नहीं। उनकी सफलता का रहस्य उनकी लोकप्रियता में निहित है। वह जनता के जीवन थे। जन-समूह के संकेतों पर उनके जीवन का कुतुबनुमा घूमता रहता था।

पूर्ववर्ती के साथ परवर्ती और कल के साथ आज को ठीक-ठीक मिलाने वाला आधुनिक राजनीति-क्षेत्र में लालाजी के अतिरिक्त और कोई नहीं हुआ। इसी विशेषता के कारण वह जन-समाज में ज़िन्दा रहे; और कहना चाहिए कि उनकी इस विशेषता ने ही उन्हें दास और तिलक के समकक्ष कर दिया था। इसी के कारण उनमें एक ऐसा नैतिक प्रवाह उमड़ता था जो बड़े-बड़े जन-समूहों को हिला देता था। आप एक राजनीतिक नेता ही नहीं, अपितु समाज-सुधारक भी थे। सेवा करने की आपकी भूख कभी शान्त न होती थी। दलितों और पीड़ितों के लिए आपके हृदय में एक विशेष स्थान था। जहाँ कहीं दुःख और दरिद्रता देखते आप वहीं दौड़ पड़ते थे। जिस कार्य में जुटते, पूरी संलग्नता के

साथ। किसी भी कार्य को आप अधूरे मन से करना नहीं जानते थे।

१८९६ तथा १८९९ में राजपूताना में दुर्भिक्ष पड़ा। लालाजी अकाल-पीड़ितों की सेवा में जी-जान से जुट गए। इससे आपकी लोकप्रियता और भी बढ़ गई। १९०७-८ में बिहार तथा युक्तप्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय भी आपने पीड़ितों की सेवा का बहुत बड़ा कार्य किया। आपके बिहार-दुर्भिक्ष के कार्य की प्रशंसा सरकार ने भी की थी। १९०५ में आपने वालण्टियर कोर (स्वयंसेवक-संघ) बनाकर काँगड़ा के भूचाल-पीड़ितों की सहायता की थी।

विद्यार्थी अवस्था से ही आपके विचारों का झुकाव कांग्रेस की ओर होने लगा। इससे पहले आप सर सैयद अहमद खाँ के लेखों तथा भाषणों को बड़े ध्यान से पढ़ा एवं सुना करते थे। जब सर सैयद ने सरकार के गीत गाने प्रारम्भ किये तो लालाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उर्दू के 'कोहनूर' तथा कई अंग्रेजी पत्रों में सर सैयद पर खूब छींटाकशी की। १८८८ में आप प्रथम बार इलाहाबाद कांग्रेस में सम्मिलित हुए, जिसके अध्यक्ष जार्ज यूल थे। वहाँ आपने कौंसिल-सुधार के प्रस्ताव पर भाषण दिया, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। आपने कांग्रेस का ध्यान शिक्षा और देशी उद्योग-धन्धों की ओर आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस की ओर से औद्योगिक प्रदर्शनियाँ होने लगीं। इसके पश्चात् आप प्रायः कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में शामिल होते रहे और पंजाब के प्रमुख कांग्रेसी प्रतिनिधि माने जाने लगे।

१९०६ में आप कांग्रेस-डेपुटेशन के सदस्य बनकर इंग्लैण्ड गये। इसके पश्चात् १९११ में भेजे गए डेपुटेशन में भी आप तशरीफ ले गए। इन डेपुटेशनों के अतिरिक्त स्वयं १९०२ में और फिर १९१० में इंग्लैण्ड गये और वहाँ लेखों, व्याख्यानों तथा मुलाकातों द्वारा भारत के लिए बड़ा सराहनीय कार्य किया। १९१४ के महायुद्ध के समय आप इंग्लैण्ड में ही थे। उस समय आपको स्वदेश लौटने का पासपोर्ट नहीं मिला और आप अमरीका चले गए। अमरीका जाकर आप चुपचाप नहीं बैठे बल्कि वहाँ

भी भारत के लिए बड़ा ज़बरदस्त प्रचार किया। आप १६१० तक अमरीका में रहे। वहाँ 'इण्डियन होम रूललीग' तथा 'इण्डियन इनफ़रमेशन ब्यूरो' नामक संस्थाएँ स्थापित कीं। 'इण्डियन होमरूल लीग' के भारतीयों के अतिरिक्त एक सहस्र के लगभग अमरीकन सदस्य भी हो गए थे। दूसरी संस्था का उद्देश्य अमरीकन जनता को भारत तथा भारतीयों के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान कराना था। वहाँ से आपने 'यंग इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। हिन्दुस्तान के बारे में बहुत सी पुस्तकें लिखीं और उन्हें मुफ्त बँटवाया। इस प्रकार आपने अमरीका में भी भारत के लिए बड़ा सराहनीय कार्य किया। फरवरी १६२० को आप अमरीका से स्वदेश लौटे।

१६०७ में बंग-भंग आन्दोलन के कारण बंगाल में जो राष्ट्रीय जागृति हुई, उसका प्रभाव पंजाब पर भी पड़े बिना न रहा। पंजाब में भी राष्ट्रीय चेतना का उदय होने लगा और इधर-उधर कुछ असाधारण घटनाएँ घटने लगीं। जिला मिण्टगुमरी की नई बस्तियों में लगान आदि के बारे में अनेक झगड़े खड़े हो गए। लालाजी ने इस जागृति में आगे बढ़कर भाग लिया। इस समय पंजाब की आँखें दो ही व्यक्तियों पर लगी हुई थीं—एक सरदार अजीतसिंह और दूसरे लाला लाजपतराय। लालाजी अब सरकार की नज़रों में भी खटकने लगे थे। अतः मई १६०७ में पंजाब-सरकार ने आपको गिरफ़्तार करके मांडले (बर्मा) जेल में नज़र-बन्द कर दिया। किन्तु छः महीने पश्चात् ही आपको छोड़ दिया गया। ११ नवम्बर १६०७ को आप जेल से निकले, तो देश का वातावरण बदल चुका था। कांग्रेस में गरम और नरम दलों का विरोध उग्र रूप धारण कर चुका था। इस समय 'लाल-बाल-पाल' के नाम से गरम दल के तीन नेता बड़े प्रसिद्ध हो रहे थे। इनमें लालाजी, लोकमान्य तथा विपिनचन्द्र पाल थे। दोनों दलों का विरोध बढ़ता ही गया और १६०७ में सूरत-कांग्रेस में बड़ा झगड़ा उठ खड़ा हुआ, यहाँ तक कि हाथापाई और मारपीट पर नौबत आ गई। गरम दल वाले आपको सभापति

बनाना चाहते थे। परिणामस्वरूप लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरम दल कांग्रेस से अलग हो गया। लालाजी ने कांग्रेस के इन दोनों दलों में सुलह कराने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हुए। १९१२-१३ में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह प्रारम्भ किया, उसके लिए लालाजी ने पंजाब से चालीस हजार रुपया इकट्ठा किया था।

१९२० में अफ्रीका से लौटने के पश्चात् आप देश-सेवा में जुट गए। इन्हीं दिनों गांधीजी द्वारा असहयोग-आन्दोलन पर विचार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया, जिसके सभापति आप ही बनाये गए। गरम विचार के होने के कारण असहयोग एवं सत्याग्रह में आपका अधिक विश्वास न था और अपने भाषण में आपने इस अविश्वास को प्रकट भी कर दिया। फिर भी जब नागपुर में कांग्रेस की ओर से उक्त प्रस्ताव को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया तो आप भी पूरी श्रद्धा से उसमें भाग लेने लगे। यह थी आपकी उत्तम कार्य-प्रणाली। आप अपने ही विचारों को दूसरों पर ज़बरदस्ती लादना नहीं चाहते थे। लालाजी ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। १९२१ के प्रारम्भ में आपने देखते-ही-देखते पंजाब के सरकारी स्कूल-कालिजों को विद्यार्थियों से खाली करा दिया। विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए आपने लाहौर में एक कालिज खोला। आपकी इन हलचलों को सरकार सहन न कर सकी और ३ दिसम्बर १९२१ को आपको गिरफ़्तार कर लिया गया, फिर थोड़े दिन बाद छोड़ दिया गया। किन्तु आप चुप बैठने वाले कब थे। जेल से छूटते ही आप फिर अपने पूर्व कार्य में लग गए। ९ मार्च १९२२ को आप पुनः गिरफ्तार कर लिये गए और दो वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। जेल में आप बीमार हो गए और आपका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरने लगा, यहाँ तक कि आपको तपेदिक का रोग हो गया। राष्ट्रीय पत्रों ने आपके छुटकारे के लिए बहुत आन्दोलन किया। जब आपका रोग बहुत भयानक हो गया तो अगस्त १९२३ में आपको छोड़ दिया गया। कुछ

दिन आराम करने के पश्चात् आप फिर राजनीतिक कार्यों में भाग लेने लगे।

१९२३ के अन्त में आप कांग्रेस स्वराज्य-पार्टी में शामिल हो गए और लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। १९२५ में 'वाक आउट' की पॉलिसी पर स्वराज्य-पार्टी से आपका मतभेद हो गया। इन्हीं दिनों पण्डित मोतीलाल नेहरू से भी आपका कुछ व्यक्तिगत मन-मुटाव चलने लगा। अतः १९२६ में आप उक्त पार्टी से निकल आए और पं० मदनमोहन मालवीय के साथ मिलकर नैशनलिस्ट पार्टी स्थापित की। आपमें अब दलबन्दी का जोश और भी बढ़ गया था। इसी जोश में आप पंजाब के चुनावों में दो क्षेत्रों से खड़े हुए और दोनों जगह सफल भी हुए। किन्तु स्वराज्य-पार्टी से विरोध होने के कारण राजनीतिक क्षेत्र में आपकी लोकप्रियता घट गई। आपने अपने सिद्धान्त के आगे इसकी कुछ परवाह नहीं की। १९२७ में पं० मोतीलाल जी से फिर आपका मेल हो गया और वह मेल अन्त तक बढ़ता ही चला गया। नेहरू-रिपोर्ट के तैयार कराने में भी आपने नेहरूजी की बड़ी सहायता की थी। १९२७ में लालाजी ने असेम्बली में कई जोरदार भाषण दिये।

लालाजी की प्रतिभा एवं सेवाएँ सर्वतोमुखी थीं। समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार तथा लोक-सेवा के अतिरिक्त आपने दलितोद्धार के लिए भी बड़ा ठोस कार्य किया। १९०० से पहले भी, जब कि कांग्रेस का ध्यान अछूतोद्धार की ओर गया भी नहीं था, लाला जी इस कार्य में लगे हुए थे। स्यालकोट के आस-पास मेघ आदि दलित जातियों को सुधारने के लिए आपने अथक परिश्रम किया था। १९२० में अमरीका से लौटने पर आपने 'सर्वेण्ट्स ऑफ पीपल सोसाइटी' की स्थापना की थी, जो अब तक दलितोद्धार का कार्य करती रही है। देश के नवयुवकों में राजनीति तथा अर्थ-शास्त्र का ज्ञान फैलाने तथा लोक-सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए उक्त सोसाइटी की स्थापना की गई थी। आपने द्वारिकादास लाइब्रेरी के नाम से एक बड़ा पुस्तकालय भी खोला था।

अनाथ बच्चों और बीमार स्त्रियों के लिए भी आपने गुलाबदेवी अस्पताल खोला। आपने अपनी समस्त कमाई इन्हीं लोकोपकारी कार्यों में लगा दी और अपना सर्वस्व देश तथा समाज के अर्पण कर दिया।

लालाजी की साहित्यिक सेवाएँ भी कम नहीं हैं। आप एक उच्च कोटि के वक्ता तथा कलम के धनी लेखक थे। 'मेरी जायदाद मेरी कलम है', आपने अपने इस कथन को सत्य कर दिखाया। प्रारम्भ में देश-सेवा के लिए आपने साहित्य को ही अपना साधन बनाया था। मेज़िनी, गेरीबाल्डी, कृष्ण, शिवाजी, बन्दा वैरागी, स्वामी दयानन्द आदि की जीवनियाँ लिखकर आपने समाज में देश-प्रेम की भावना उत्पन्न करने का सराहनीय प्रयत्न किया। अमरीका जाकर भी आपने कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'यंग इंडिया', 'आर्य समाज' और 'भारत का राजनीतिक भविष्य' अधिक उपयोगी हैं। आपकी सर्वोत्तम रचना 'अनहैपी इंडिया (दुखी भारत) है, जो मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' के उत्तर में लिखी गई है, आपने अपनी प्रारम्भिक आत्म-कथा भी लिखी; कई धार्मिक पत्रों का सम्पादन भी किया। उर्दू में दैनिक 'वन्देमातरम्' और अंग्रेजी में साप्ताहिक 'पीपुल' पत्र भी निकाले, जो आपकी मृत्यु के पश्चात् भी बहुत दिनों तक निकलते रहे हैं।

१९२६-२७ में जब देश में शासन-सुधार की माँग का आन्दोलन हुआ तो ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को भुलावा देने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त हुआ था, जिसे यह कार्य सौंपा गया कि वह भारतवर्ष की अवस्था की जाँच करे और शासन-सुधार-सम्बन्धी अपनी राय भी पेश करे। १९२८ के आरम्भ में उक्त कमीशन ने भारत का दौरा किया। इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था, इसलिए देश ने एक स्वर से इसका बहिष्कार किया। जहाँ-जहाँ भी यह कमीशन गया, लोगों ने इसका काले झण्डों से स्वागत किया और इसके खिलाफ तरह-तरह के प्रदर्शन किये। ३० अक्तूबर १९२८ को साइमन-कमीशन लाहौर पहुँचा।

लाहौर में इस दिन दफा १४४ लगा दी गई थी। नगर में बड़ी सनसनी फैली हुई थी। जगह-जगह पर पुलिस का पहरा था। कांग्रेस और जनता ने साइमन-कमीशन का बहिष्कार किया, फिर पंजाब क्यों किसी से पीछे रहे—वह पंजाब जिसका नेतृत्व लाला लाजपतराय करते हैं? अतः जब साइमन-कमीशन लाहौर पहुँचा, उसके बहिष्कार का जुलूस निकाला गया। जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे ६० वर्ष के वृद्ध नेता लाला लाजपतराय। जब जुलूस स्टेशन पर पहुँचा, जहाँ वह गोरों का काला कमीशन उतरने वाला था, तो पुलिस के अधिकारियों ने खीझकर जुलूस पर लाठी बरसानी प्रारम्भ कर दी। लालाजी की छाती पर लाठियाँ पड़ने लगीं, किन्तु वह वृद्ध केसरी हिमालय की भाँति अडिग, छाती फुलाए सब-कुछ सहन करते रहे। युवकों के हृदय तड़प उठे, क्योंकि ये लाठियाँ लालाजी पर नहीं, भारत के गौरव पर पड़ रही थीं। उसी समय रायजादा हंसराज ने आगे बढ़कर लाठियों का प्रहार अपने ऊपर लेना शुरू कर दिया। लालाजी को बहुत चोट आई।

उसी दिन शाम को लालाजी ने एक सभा में भाषण देते हुए कहा था—"मेरे ऊपर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील बनेगा।" लालाजी का शरीर तथा मन इस अपमान को सहन नहीं कर सका और १७ नवम्बर को प्रातःकाल ७ बजे लालाजी परलोक सिधार गए। समस्त देश में इस घटना से शोक तथा विक्षोभ की लहर दौड़ गई।

लाला लाजपतराय न केवल पंजाब की, बल्कि भारतवर्ष की एक महान् शक्ति थे। पंजाब तो उन्हें अपना पिता कहता था। उनकी मृत्यु के पश्चात् वहाँ जो स्थान खाली हो गया, वह आज तक नहीं भर पाया है।

: १४ :

मनुष्यों और कीड़ों की लड़ाई

(श्री सन्तराम बी० ए०)

इस संसार में मनुष्यों और कीड़ों के बीच घोर युद्ध चल रहा है। वे हर समय एक-दूसरे के प्राण लेने के प्रयत्न में रहते हैं। शत्रु-कीड़ों की सेना से अपना बचाव करने के लिए मनुष्य को सैकड़ों उपाय करने पड़ते हैं। केवल अणुवीक्षण यन्त्र से ही ये देखे जा सकते हैं; इन्हें जीवाणु या कीटाणु तथा अंग्रेजी में बैक्टिरिया आदि कहते हैं।

अणुवीक्षण यन्त्र में सबसे छोटे कीटाणु गोल-गोल दानों की लड़ी या समूह-सरीखे दीख पड़ते हैं। इनको अंग्रेजी में कोक्काई कहते हैं। बड़ी शीघ्रता से बढ़ने के कारण ये हमारे बड़े ही भयानक शत्रु हो गए हैं। हिसाब लगाकर देखा गया है कि एक कीटाणु चौबीस घण्टे में १,६०,००,००० से भी अधिक कीट उत्पन्न कर सकता है।

यह हमारा सौभाग्य ही समझना चाहिए कि ये कीटाणु सभी दशाओं में जीते नहीं रह सकते। इनमें से कई जीवाणु ऐसे हैं जिनके बढ़ने के लिए खुली ऑक्सीजन वायु का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन जीवाणुओं को अंग्रेजी में अपरोब्ज़ कहते हैं। फिर कई-एक ऐसे भी हैं जो ऑक्सीजन बिलकुल नहीं चाहते। ये अनेपरोब्ज़ कहलाते हैं।

इसके अतिरिक्त अपने बचाव के लिए इनको आवश्यक भोजन, ताप और सील भी चाहिए। गन्दगी, जगह की तंगी और गन्दी वायु, ये सब हमारे इन शत्रुओं की बड़ी सहायता करते हैं; किन्तु शुद्ध वायु, स्वच्छता और विशेषतः सूर्य का प्रकाश बहुत से जीवाणुओं के लिए विष के समान हैं। क्षय रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु सूर्य के प्रकाश और शुद्ध वायु में मर जाते हैं। सभी जीवाणु हमारे शत्रु हों, सो बात नहीं है। जल, वायु और धूप में लाखों-करोड़ों जीवाणु ऐसे भी हैं, जो दिन-

रात हमारे हित के लिए काम करते हैं। वे हमारे पीने के पानी को साफ करते हैं और गली-सड़ी चीजों को खाद बना देते हैं। इस प्रकार ये प्रकृति में भंगी का काम करते हैं।

. जिनसे हमारी शत्रुता है ऐसे कीटाणु खसरा, चेचक, विसूचिका, प्लेग, ज्वर, कूकर खाँसी आदि छूत के रोगों को उत्पन्न करते और फैलाते हैं। वे मनुष्य शरीर-रूपी दुर्ग में तीन प्रकार से प्रवेश करते हैं—(१) साँस में गन्दी वायु के साथ भीतर जाकर वे गले या फेफड़ों में घर बना लेते हैं। क्षय के रोग में ऐसा ही होता है। (२) भोजन और पानी के साथ वे अन्तड़ियों में चले जाते हैं, जैसा कि विसूचिका, ज्वर और क्षय रोग में। (३) वे खाल में घाव के द्वारा प्रवेश करते हैं, जैसा कि चेचक में।

यदि ये रोग-जन्तु थोड़ी संख्या में भीतर जायँ या इन्हें बढ़ने और फैलने के लिए अनुकूल भूमि न मिले तो ये मर जाते हैं, और शरीर से बाहर फेंक दिए जाते हैं।

शरीर और रोग-जन्तुओं के बीच लड़ाई बराबर जारी है। इसलिए अपने प्राण बचाने के लिए शरीर को पुष्ट बनाये रखना आवश्यक है, नहीं तो शत्रु अचानक आ दबाएगा। शरीर को नीरोग बनाने के लिए खुली और स्वच्छ वायु में रहना, खूब सोना और बहुत सा पौष्टिक, परन्तु सादा भोजन खाना तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना बहुत लाभदायक है, ताकि हमारे शरीर के रक्षक कीड़े इन शत्रु-कीड़ों से लड़कर उन्हें हराकर निकाल दें।

भोजन से ही हमारे शरीर को बल मिलता है। अक्सर देखने में आया है कि जो बच्चे दूध, घी, मछली का तेल, अण्डे, हरी सब्जी और फलों आदि से अपने भोजन में पौष्टिक तत्त्व (विटामिन) बढ़ा लेते हैं, वे उन बच्चों के मुकाबले में, जो दूध, घी आदि चीजों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं, छूत की बीमारी का भली प्रकार मुकाबला कर सकते हैं। पहले तो ये शत्रु-कीटाणु उन पर असर ही नहीं कर पाते और अगर वे बीमारी

के शिकार हो भी गए तो उनके रुधिर में जो शरीर-रक्षक कीटाणुओं की सेना है वह इन शत्रु-कीटाणुओं को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।

हम कम खर्च करके भी पौष्टिक भोजन प्राप्त कर सकते हैं; यथा दूध के बदले दलिया खाना, मँहगे फलों के बदले केला, नासपाती, अमरूद, खीरे आदि का सेवन। खालिस काडलिवर आयल (मछली का तेल) की एक पौण्ड की बोतल पाँच रुपये में मिल जाती है, जो चार बच्चों के लिए महीने-भर के लिए काफी है।

भाजियों में गाजर, मूली, टमाटर, शलजम, गोभी, प्याज और सलाद आदि कच्चे ही खाने चाहिएँ। जहाँ तक हो सके भाजी तथा फल छिलके-सहित खाने चाहिएँ।

इसी प्रकार आटा चोकर सहित खाना अधिक लाभदायक है। गेहूँ में चावल की बनिस्बत अधिक प्रोटीन है। दालों को अगर हम चौबीस घण्टे भिगोकर फिर गीले कपड़े में बाँधकर रखें तो उनमें अंकुर उग आएँगे। इसमें पौष्टिक पदार्थ माल्ट होता है तथा जो गुण गोश्त में हैं, वही इसमें पाए जाते हैं।

इस प्रकार तनिक-सी देखभाल से आप अपने भोजन से सहज ही पौष्टिक पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं। स्वास्थ्य के लिए यह भी बहुत आवश्यक है कि शारीरिक व्यायाम करें। जो मनुष्य अपना काम आप करते हैं, उन्हें दो लाभ हैं—एक तो व्यायाम हो जाता है, दूसरे नौकर के ऊपर जो व्यर्थ पैसा खर्च होता है, उसे वे अपने खाने-पीने पर खर्च कर सकते हैं।

मेरा देश

(श्री सुदर्शन)

मैं अपने देश की मिट्टी पर सारे संसार का सोना कुरबान कर दूँ। मेरा देश स्वर्ग से भी बढ़कर है।

हिमालय ने उसकी महत्ता देखी है। गंगा ने उसके गीत गाये हैं। इतिहास ने उसकी शान-शोभा का बखान किया है। मेरा देश वह है, जिसने संसार को जीवन और ज्योति की राहें दिखाई हैं।

प्रकृति ने अपने विश्वकर्मा हाथों से इसका शृङ्गार किया है। सब ऋतुएँ बारी-बारी से आकर यहाँ अपना चाँदी-सोने का वरदान लुटाती हैं। मेरा देश वह है, जहाँ की धूल से हीरा-पन्ना पैदा होते हैं।

जिसकी अमर कहानियाँ स्मृति के पुराने पत्थरों पर खुदी हैं, जिसने हजारों धर्मवीर और लाखों कर्मवीर पैदा किये हैं, जिसने कभी अपने वचन से मुँह नहीं मोड़ा—वही देश मेरा है।

जिसकी ज़मीन पर सभ्यता ने सबसे पहले आँख खोली, जिसकी गोद में ज्ञान पाकर जवान हुआ, जिसके आसमान ने विवेक की वर्षा की—मेरा देश वही है।

जिसकी भूमि सदा हरी रही, जिसके भण्डार सदा भरे रहे, जिसका झण्डा सदा ऊँचा उड़ा—मेरा देश वही है।

मेरा देश जागा है। उसने सपनों का संसार छोड़कर कर्मयुग में आँख खोली है।

मेरा देश जागा है। उसने अपना भाग्य और भविष्य अपने होनहार हाथों में लेने का निश्चय कर लिया है।

ऐ चाँद! अपनी दूध से धोई और रस में समोई हुई किरणें ज़मीन पर बिछा दे, भारतवर्ष आज सदियों की नींद से जागा है। ऐ सूरज!

अपने प्रकाश की श्रद्धांजलि लेकर आगे बढ़, भारत ने आज करवट बदली है।

आज कलियाँ मुस्करा-मुस्कराकर खिल रही हैं। आज फूल हँस-हँसकर महक रहे हैं। आज गंगा-जमुना की लहरें अपने अभ्युदय और उत्थान की अमर कहानियाँ संसार के सामने रख रही हैं।

भारतवर्ष जागा है। अब इसकी वीरता के गीत फिर से सुनाई देंगे। भारतवर्ष जागा है। अब इसकी विजय-पताका फिर से आकाश में फहराएगी। जागो! कल अँधेरा समाप्त हो चुका और आज का नवयुग नई आशाएँ, नये इरादे और उत्साह लेकर हमारी तरफ बढ़ा चला आ रहा है।

हमारे लहू में उमंगें जाग रही हैं और हमारे दिलों की गहराइयों में जीवन अपनी विप्लव-वीणा पर जीत के गीत गा रहा है। और जब हम अपनी कल की दुनिया छोड़ते समय अफसोस करते हैं, तो जीवन अपने सामने फैले हुए आज को देखकर मुस्कराता है। और जब वह हमें जगाने को अपना मुँह खोलता है, तो दुनिया के बादल और बिजलियाँ उसकी ज़बानें बन जाती हैं। जब वह बोलता है, तो पहाड़ों की ऊँचाइयाँ उसके सामने सिर झुका देती हैं, समुद्रों की गहराइयाँ उसके सामने नंगी हो जाती हैं।

यह देखकर हमारी आँखें नींद के नशे को फटे हुए कुरते की तरह उतारकर दूर फेंक देती हैं और पलकों की बाँहें ऊँची उठाकर पूरे ज़ोर से अँगड़ाई लेती हैं। और जीवन कहता है—अब तुम अँधेरे में न रहोगे, तुम्हारे आसपास प्रकाश लहराएगा और तुम्हारी आत्मा में न हारने वाली शक्ति समा जायगी।

पद्य खण्ड

प्राचीन

: १ :

कबीर के दोहे

(महात्मा कबीर)

कबिरा गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥१॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगा, ज्यों तारा परभात ॥२॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥३॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ-सा बुरा न कोय ॥४॥
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै-फलै अघाय ॥५॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥६॥
साध सती और सूरमा, ज्ञानी और गज दन्त।
एते निकसि न बहुरैं, जो युग जाहि अनन्त ॥७॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय ॥ ८ ॥
ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधो निन्दा सोय ॥ ९ ॥
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना मन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥१०॥
दोष पराए देखि करि, चला हसंत हसंत।
अपने चित्त न आवई, जिनको आदि न अन्त ॥११॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीय की, कटे उँजेरा होय ॥१२॥
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥१३॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला हो न ऊजला, सौ मन साबुन खाय ॥१४॥
चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह ॥१५॥
साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहिं समाय ॥१६॥
प्रेम प्रीत से जो मिलै, तासों मिलिए धाय।
अन्तर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥१७॥
जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ॥१८॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१९॥
माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय।
हाथ मलै औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥२०॥

: २ :

कृष्ण का बाल-रूप

(भक्त सूरदास)

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनन्द भरि लेत बलैया ।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवहु मेरो कुँअर कन्हैया ॥
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसति नँदरैया ॥
किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिंब पकरिबैं धावत ॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ॥
कनक भूमि पर कर-पग-छाया यह उपमा एक राजति ।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा कमल बैठकी साजति ।
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति ॥
सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये ॥
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिये ।
कठुलाकंठ, वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिये ।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सतकल्प जिये ॥
जेवत स्याम नन्द की कनियाँ ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखत नँदरनियाँ ॥
बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि व्यंजन विविध अँगनियाँ ।
डारत खात लेत अपनैं कर रुचि मानत दधि दोनियाँ ॥

मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छबि घनियाँ।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो छबि कहत न बनियाँ॥
जो रस नन्द जसोदा बिलखत, सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ।
भोजन करि नँद आचमन लीन्हों माँगत सूर जुठनियाँ॥

: ३ :

हनुमान का संजीवनी बूटी लाना

(महाकवि तुलसीदास)

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी-ऊपर कपि गयऊ॥

देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमान।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि तानि॥

परउ मुरछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाये। कपि समीप अति आतुर आये॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगाया॥
मुख मलीन मन भये दुखारी। कहत बचन लोचन भरि बारी॥
जेहि बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम-पद-कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम-सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठि कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघु-कुल-तिलक॥

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास बखाने। भये दुखी मन महँ पछिताने॥

अहह देव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥
तात गहरु होइहि तोहि जाता। काज नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवउँ तोहि जहँ कृपानिकेता॥
सुनि कपिमन उपजा अभिमाना। मोरे भारि चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कपि कह कर जोरी॥

तव प्रताप उर राखि प्रभु, जैहउँ नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाइ-पद, बंदि चलेउ हनुमंत॥
भरत-बाहु-बल-शील-गुन, प्रभु पद-प्रीति अपार।
मन महँ जात सराहत, पुनि पुनि पवनकुमार॥

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी॥
अर्धराति गई कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर करहीना॥
अस मम जिवन बंधु बिन तोही। जौं जड़ दैव जियावइ मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई॥
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारि-हानि बिसेष छति नाहीं॥
अब अपलोक लोक सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥
सौंपेसि मोहि तुमहिं गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतर काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन॥
उमा एक अखण्ड रघुराई। नरगति भगत-कृपालु देखाई॥
प्रभुबिलाप सुनि कान, बिकल भये बानर-निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ वीर रस॥
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

: ४ :

मीरा के पद

(मीराबाई)

: १ :

मन रे परस हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल-कोमल त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन।
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने चरन।
जिन चरत ब्रह्माण्ड भेट्यो, नखसिखौ श्री भरन।
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम घरन।
जिन चरन कालीहिं नाथ्यो, गोपलीला करन।
जिन चरन धारयौ गोवर्धन, गरब मघवा हरन।
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन॥

: २ :

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरत साँवरी सूरत नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल।

छुद्र घंटिका कटि तट शोभित नूपुर शब्द रसाल ।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भगत-बछल गोपाल ।

: ३ :

पायो जी मैंने राम-रतन धन पायो ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर कर किरपा अपणायो ।
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सबै खोवायो ।
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवै दिन-दिन बढ़त सवायौ ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयौ ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि-हरखि जस गायौ ।

: ४ :

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ॥
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥
छाँड़ दई कुल की कान क्या करिहै कोई ।
सन्तन ढिंग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई ॥
चुनरी के किये टूक ओढ़ लीन्ह लोई ।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई ॥
अँसुवन जल सींचि-सींचि-प्रेम-बेल बोई ।
अब तो बेल फैल गई आनन्द फल होई ॥
दूध की मथनियाँ, बड़े प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढ़ लियो, छाछ पियै कोई ॥
आई मैं भगति काज जगत देख मोही ।
दासी मीरा गिरधर प्रभु तारो अब मोही ॥

: ५ :

बानी

(गुरु नानक)

काहे रे बन खोजन जाई ।

सरब निवासी सदा अलेपा,

तोही संग समाई ॥

पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है,

मुकर माहिं जस छाई ॥

तैसे ही हरि बसै निरन्तर,

घट ही खोजौ भाई ॥

बाहर भीतर एकै जानो,

यह गुरु ग्यान बताई ॥

जन जानक बिन आपा चीन्हे,

मिटे न भ्रम की काई ॥

हौं कुरबाने जाउँ पियारे, हौं कुरबाने जाउँ ।
हौं कुरबाने जाउँ तिन्हाँ दे, लैन जा तेरा नाउँ ॥
लैन जो तेरा नाउँ तिन्हाँ दे, हौं सद कुरबाने जाउँ ।
काया रँगन जे थिये प्यारे, पाइये नाऊँ मजीठ ।
रंगनवाला जे रँगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ ॥
जिनके चोलड़े रत्तड़े प्यारे, कंत तिन्हाँ दे पास ।
धूड़ तिन्हाँ को जे मिले जाकी, नानक दी अरदास ॥

: ६ :

नीति-शिक्षा

(रहीम)

दीन लखै सब जगत् को, दीनहि लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहि लखै, दीनबन्धु सम होय ॥१॥
रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरैं, मोती, मानुस, चून ॥२॥
रहिमन धागा प्रेम कर, मत तोरहु चटकाइ ।
टूटे से फिर ना मिलै, मिले गाँठ परि जाइ ॥३॥
जो रहीम गति दीप कै, कुल कपूत कै सोइ ।
बारे उजियारो करैं, बढ़े अँधेरो होइ ॥४॥
धूरि धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पतिनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥५॥
रहिमन याचकता कहे, बड़े छोट हुइ जात ।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥६॥

: ७ :

भक्ति

(बिहारीलाल)

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित द्युति होय ॥१॥
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥२॥

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसति सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ ॥३॥
तजि तीरथ हरि-राधिका, तन द्युति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि-निकुञ्ज मग, पग-पग होत प्रयाग ॥४॥
सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥५॥
सखि सोहति गोपाल के, उर गुञ्जन की माल।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल ॥६॥
जहाँ-जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूँ बिन छनि गहि रहत, दृगनि अजहुँ वह ठौर ॥७॥
चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥ ८ ॥
मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यों राजत नँदनन्द।
मनु ससि सेखर के अकस, किय सेखर सतचन्द ॥ ९ ॥
नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नन्दित करी, यह दिसि नन्दकिसोर ॥१०॥
प्रलय करन बरसन लगे, जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्यो हरषि, गिरिधर गिरि धर हाथ ॥११॥
लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल ॥१२॥
मकराकृत गोपाल के, कुण्डल सोहत कान।
धस्यो समर हिय गढ़ मनो, ड्योढ़ी लसत निसान ॥१३॥
गोधन तू हरष्यो हिये, घरियक लेहि पुजाय।
समुझि परैगी सीस पर, परत पसुनि के पाय ॥१४॥
सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात ॥१५॥

अधर धरत हरि के परत, ओट डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष-सी होति ॥१६॥
गिरि ते ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन कहै, प्रेम-पयोधि पगार ॥१७॥
चटक न छाँड़त घटतहू, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यौ चोल रंग चीर ॥१८॥
न ये बिससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सुभाय।
आँटे परि प्रानन हरैं, काँटे लौं लगि पाय ॥१९॥
नीच हिये हुलसो रहै, गहे गेंद को पोत।
ज्यों-ज्यों माथे मारिये, त्यों-त्यों ऊँचो होत ॥२०॥

: ८ :

रसखान की भक्ति

(रसखान)

: १ :

मानुष हौं, तो वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो
चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि कौ
जो धरयौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं
मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

: २ :

या लकुटी अरु कामरिया पर
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवोनिधि को सुख
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
इन आँखिन सों रसखानि कबौं
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम
करील के कुञ्जन ऊपर वारौं॥

: ३ :

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं
गुञ्ज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन
गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भावतो वोही मेरो रसखानि, सो
तेरे कहे सब स्वाँग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की
अधरान-धरी अधरा न धरौंगी॥

: ४ :

सेस महेस गनेस दिनेस
सुरेसहु जाहिं निरन्तर गावैं।
जाहिं अनादि अनंत अखंड
अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक ब्यास रटैं
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ
छछियाँ भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

: ५ :

गावैं गुनी गनिका गंधर्व, औ'
सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं,
ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध,
निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

: ६ :

नीति के दोहे

(वृन्द)

फीकी पै नीकी लगे, कहिये समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि॥१॥
जो जाको गुन जानहीं, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अम्बहि लेत हैं, काग निबौरी हेत॥२॥
कैसे निबहे निबल जनि, करत सबल सों बैर।
जैसे बस सागर विषै, करत मगर सों बैर॥३॥
देबो अवसर को भलो, जासों सुधरैं काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम॥४॥
अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारियें, जेती लम्बी सौर॥५॥

विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखा को पौन ॥६॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै ब्यौपार ।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥७॥
अति परिचय ते होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देति जराय ॥८॥
भले-बुरे सब एक सों, जौ लौं बोलत नाहिं ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माँहिं ॥९॥
मूरख को पोथी दई, बाँचन को गुण गाथ ।
जैसे निर्मल आरसी, दई अन्ध के हाथ ॥१०॥
मधुर बचन से जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक शील जल सों मिटै, जैसे दूध-उफान ॥११॥
समय समझ कै कीजिये, काम वहै अभिराम ।
सैंधव माँग्यो जीमते, घोरा को कह काम ॥१२॥
जैसो गुन दीनौ दई, तैसो रूप निबन्ध ।
ये दोनों कहँ पाइये, सोनौ और सुगन्ध ॥१३॥
अपनी-अपनी ठौर पर, शोभा लहत विशेष ।
चरन महावर है भलो, नैनन अंजन रेख ॥१४॥
उर ही ते कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयालु ।
कौन सिखावत है कहो, राजहंस कौ चाल ॥१५॥
सज्जन अंगीकृत कियो, ताको लेहिं निबाहि ।
राखि कलंकी कुटिल शशि, तउ सिव तजत न ताहि ॥१६॥
एक दशा निबहै नहीं, जनि पछितावहु कोय ।
रविहू की इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥१७॥
जिहिं प्रसंग दूषण लगै, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारी हाथ ॥१८॥

मूरख गुन समुझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को विभौ, देखै जौ न उलूक ॥१९॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।
रोपै बिरवा आक कौ, आम कहाँ ते होय ॥२०॥
कष्ट परे हू साधुजन, नेकु न होत मलान।
ज्यों-ज्यों कंचन ताइये, त्यों-त्यों निरमल जान ॥२१॥

: १० :

यमुना-वर्णन

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

तरनि-तनूजा तट तमाल-तरुवर बहु छाए,
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा,
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।
मनु आतप-बानर तीर को सिमिटि सबै छाए रहत,
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरख नैन मन सुख लहत।
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन,
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा,
कै उमंगे प्रिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा।
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिंग सोहई,
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई।
कै पिय-पद-उपमान जानि यहि निज उर धारत,
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिसि अस्तुति उच्चारत।

कै ब्रज हरि-पद-परस हेत कमला बहु आईं,
कै ब्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाईं।
कै सात्विक अरु अनुराग दोऊ ब्रज-मंडल बगरे फिरत,
कै जागि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत।

परत चंद प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो,
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो।
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो,
कै तरंग-कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो।
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है,
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है।

कबहुँ होत सतचंद, कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत,
पवन-गवन-बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै,
कै तरंग की डोर हिंडोरन करति कलोलै।
कै बाल-गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत-उत धावती,
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल,
कै तारागन गगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल।
कै कालिंदी नीर-तरंग जिते उपजावत,
तितने ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार-जल कच्छरत,
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत।

कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत,
कहुँ कारंडव उड़त, कहूँ जल-कुक्कुट धावत।
चक्रवाक कहुँ बसत, कहूँ बक ध्यान लगावत,
सुक, पिक जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत।

कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रार बिबिध पंछी करत,
जलपान, नहान करि सुख-भरे तट-सोभा सब जिय धरत।

: ११ :

पद

: १ :

जगत् मैं घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नाहिं पुज्यो॥
फूटहिं सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यो आपु नसे सह साज॥
जो जग मैं धन, मान और बल आपुनो राखन होय।
तो आपुने घर मैं भूलेहू फूट करो मति कोय॥

: २ :

खंडन जग मैं काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै॥
तासों बाहर होई कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै॥
अपुनो ही पै क्रोध बावरे अपुनो काटैं अंग।
'हरीचन्द' ऐसे मतवारेन को कहा कीजै संग॥

जागो जागो रे भाई ।
सोअत निसि बैस गँवाई । जागो जागो रे भाई ।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई ॥
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई ।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ॥
अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई ।
फिर पछिताये कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहो मुँह बाई ॥

: १२ :

मातृभूमि

(सत्यनारायण कविरत्न)

पावन परम जहाँ की, मंजुल महात्म्य धारा ।
पहले ही पहले देखा, जिसने प्रभात प्यारा ॥
सुरलोक से भी अनुपम, ऋषियों ने जिसको गाया ।
देवेश को जहाँ पर, अवतार लेना भाया ॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥१॥
ऊँचा ललाट जिसका, हिम-गिर चमक रहा है ।
सुबरन किरीट जिस पर, आदित्य रख रहा है ॥
साक्षात् शिव की मूरत, जो सब प्रकार उज्ज्वल ।
बहता है जिसके सिर से, गंगा का नीर निर्मल ॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥२॥
सर्वोपकार जिसके, जीवन का व्रत रहा है ।
प्रकृति पुनीत जिसकी, निरभय मृदुल महा है ॥

जहँ शान्ति अपना करतब करना न चूकती थी।
कोमल-कलाप-कोकिल कमनीय कूकती थी॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥३॥

वह वीरता का वैभव, छाया जहाँ घना था।
छिटका हुआ जहाँ पर विद्या का चाँदना था।
पूरी हुई सदा से, जहँ धर्म की पिपासा।
सत संस्कृत पियारी, जहँ की थी मातृभासा॥
वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥४॥

: १३ :

बढ़े चलो बढ़े चलो

(श्री जयशंकर 'प्रसाद')

हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीरपुत्र हो
दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है
बढ़े चलो, बढ़े चलो।'
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्यदाह-सी,
सपूत मातृभूमि के,
रुको न शूर साहसी!

अराति सैन्य-सिन्धु में,
सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो—
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

: १४ :

भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक-हार॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥१॥
विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल-कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, उठा तब मधुर साम-संगीत॥
बचाकर बीज-रूप से सृष्टि नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत॥२॥
सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता-विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहास॥
सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह, एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह॥३॥
धर्म का ले-लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्ति-सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट्, दया दिखलाते घर-घर घूम॥४॥
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि॥
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥५॥

: १५ :

कर्मवीर

(अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध')

देखकर बाधा विविध बहु विघ्न घबराते नहीं ।
रह भरोसे भाग्य के, दुख भोग पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो, किन्तु उकताते नहीं ।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं ॥
हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले-फले ॥१॥
आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही ।
सोचते-कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वहीं ॥
मानते जी की है, सुनते हैं सदा सबकी कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत् में आप ही ॥
भूलकर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥२॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज-कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होगी नहीं उनके किये ।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिए ॥३॥

: १६ :

पुष्प की अभिलाषा

(श्री माखनलाल चतुर्वेदी)

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ;
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ;
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ;
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ;
मुझे तोड़ लेना वन-माली
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

: १७ :

भारतीय विद्यार्थी

समय जगाता है, हम सबको झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य में निर्भर लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर, जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी ॥१॥
समय एक पल भी न हमें, अब भाई, व्यर्थ बिताना होगा,
शक्ति बढ़ा गौरव-गिरीश पर, चढ़कर शौर्य दिखाना होगा।
सम्पति का उपयोग हमें अनुकूल बुद्धि से करना होगा,
बढ़ते हुए मार्ग में हमको नहीं कभी भी डरना होगा।
इस कर्तव्य-भूमि पर तृण-सम प्रण पर प्राण गँवाने होंगे,
वीरों ही के पद-चिह्नों पर अपने पैर जमाने होंगे ॥२॥

देख-देख भारत को उनके है बहती आँसू की धारा,
मानो यह बन गया उन्हीं से, सृष्टि-मेखला-सागर खारा।
पर अब अपनी ओर देख मन उनका धीरज धर पाया है,
यह संसार सदा नवयुवकों का ही दम भरता आया है।
'हम पर है सब भार'—बन्धु ! यह बात ध्यान से टले न देखो,
विश्वासी वे आर्य स्वर्ग में कर-कमलों को मलें न देखो ॥३॥
ब्रह्मचर्य-व्रत भीष्म पितामह को आगे रख धार रहे हों,
वार तेज में अर्जुन बनकर, दुर्जन-दल को मार रहे हों।
सादेपन में हो सुतीक्ष्ण पागल से प्रण को पाल रहे हों,
न्याय-नीति में विदुर सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों।
कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावे, हों बस इसी बात के प्रार्थी,
ऋषियों की सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय विद्यार्थी ॥४॥
सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्मस्थल में मरने के गुण,
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिलाकर' कर्मस्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्य-शक्ति से दुनिया भर के मन वश करने के गुण।
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥५॥
भारतीय शालाओं के गुण विश्व-विदित करने वाले हों,
भारतीय शिक्षा का सूरज शीघ्र उदित करने वाले हों।
भारतीय सागर को बढ़कर नित्य मुदित करने वाले हों,
भारतीय निन्दक-समूह अविलम्ब क्षुभित करने वाले हों।
परिवर्तन कर देने वाले, देवि भारती के आज्ञार्थी,
निस्सन्देह कहा सकते हैं ऐसे भारतीय विद्यार्थी ॥६॥
आज जगत् की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है,
वर्तमान आविष्कारों में हाय ! हमारा काम नहीं है।

रोता है सब देश, देश में दानों को भी दाम नहीं है,
कहते हैं सब लोग, यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है।
नाम नहीं है! काम नहीं है! दाम नहीं है! राम नहीं है!
तो बस इन्हें प्राप्त करने तक हमको भी आराम नहीं है ॥७॥
घर-घर में जगदीश चन्द्र बसु होना काम हमारा ही है,
बनकर कृषक, गर्व से कृषि का बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ाकर ताजमहल फिर रच करके दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन देश-देश में अपने पोत घुमाने होंगे।
रेल, तार आकाश-यान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे?
शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहना न सकेंगे ॥८॥
पहले बाल भरत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धु-प्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा।
तभी भरत हो, देह-मान तज, विश्वरूप बन जाना होगा,
फिर भारत के पुत्र भरत कहलाकर गौरव पाना होगा।
जब तक नहीं भरत-कुल-दूषण भूषण हो होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥९॥
भारत माता अपने इन पुत्रों को पहले का-सा बल दे,
हे भारती! दया कर क्षण में सबकी दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्माएँ आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो,
भारतवासी मिलकर गावें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो।'
यह सुनकर जगतीतल कह दे—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो',
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो' ॥१०॥
जीवन-रण में वीर! पधारो मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिरि पर बढ़ना, तुमसे सब विघ्नों को भय हो।
नेम निभाओ, प्रेम बढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह—'विजयी भारतवर्ष पधारो।'

भारत के सौभाग्य-विधाता, भारत माता के आज्ञार्थी,
भारत-विजय-क्षेत्र में जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥११॥

: १८ :

मेरा जीवन

(श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान)

: १ :

मैंने हँसना सीखा है,
मैं नहीं जानती रोना।
बरसा करता पल-पल पर
मेरे जीवन में सोना।

: २ :

मैं अब तक जान न पाई
कैसी होती है पीड़ा?
हँस-हँस जीवन में कैसे
करती है चिन्ता क्रीड़ा?

: ३ :

जग है असार सुनती हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता।
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता।

: ४ :

कहते हैं होती जाती
खाली जीवन की प्याली।
पर मैं उसमें पाती हूँ
प्रतिपल मदिरा मतवाली।

: ५ :

उत्साह उमंग निरन्तर
रहते मेरे जीवन में।
उल्लास विजय था हँसता
मेरे मतवाले मन में।

: ६ :

आशा आलोकित करती
मेरे जीवन के प्रतिक्षण
हैं स्वर्ण सूत्र-से वलयित
मेरी असफलता के धन

: ७ :

सुख-भरे सुनहले बादल,
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास, प्रेम साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

: १६ :

वीरों का वसन्त

वीरों का कैसा हो वसन्त ?
आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ, अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
फूली सरसों ने दिया रङ्ग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनङ्ग,
वधु-वसुधा पुलकित अङ्ग-अङ्ग,
हैं वीर वेश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-अन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग,
ए कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
हल्दी-घाटी के शिला-खण्ड,
ए दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचण्ड,
राणा नाना का कर घमण्ड,

दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हन्त !
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

: २० :

वह देश कौन सा है

(श्री रामनरेश त्रिपाठी)

: १ :

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है वह देश कौन सा है॥
जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन सा है॥

: २ :

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन सा है॥
जिसके बड़े रसीले फल कन्द नाज मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन सा है॥

: ३ :

जिसके सुगन्ध वाले सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन-रात हँस रहे हैं वह देश कौन सा है॥

मैदान गिरि बनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ है वह देश कौन सा है॥

: ४ :

जिसके अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन सा है॥
सबसे प्रथम जगत् में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा वह देश कौन सा है॥

: ५ :

पृथ्वी-निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन सा है॥
जिसमें हुए अलौकिक तत्त्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजल वह देश कौन सा है॥

: ६ :

छोड़ा स्वराज्य तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम था जहाँ पर वह देश कौन सा है॥
निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे।
लक्ष्मण-भरत सरीखे वह देश कौन सा है॥

: ७ :

देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं।
माता-पिता जगत् का वह देश कौन सा है॥
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल-ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन सा है॥

: ८ :

विद्वान्, वीर योगी, गुरु राजनैतिकों का।
श्रीकृष्ण था जहाँ पर वह देश कौन सा है॥
वाल्मीकि व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे।
श्री कालिदास वाला वह देश कौन सा है॥

: ६ :

निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे वह देश कौन सा है॥
सैंतीस कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा वह देश कौन सा है॥

: २१ :

अन्वेषण

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुञ्ज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में॥

मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥

बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में॥

दुख से रुला-रुलाकर तूने मुझे चिताया।
मैं मस्त हो रहा था तब हाय! अंजुमन में॥

बाजे बजा-बजाकर मैं था तुझे रिझाता।
जब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में॥

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में॥

तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में॥

तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में॥

हरिचन्द और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में॥
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।
तू ही विहँस रहा था महमूद के रुदन में॥
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की दहन में॥
आखिर चमक पड़ा तू गांधी की हड्डियों में।
मैं तो समझ रहा था सुहराब-पील-तन में॥
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है।
हैरान हो के भगवन् आया हूँ मैं सरन में॥
तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में।
विश्वास क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में॥
हे दीनबन्धु! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में॥
कठिनाइयों, दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में॥
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में॥

: २२ :

गांधी जी के प्रति

(श्री मैथिलीशरण गुप्त)

सन्त महात्मा हो तुम जग के बापू हो हम दीनों के !
दलितों के अभीष्ट वरदाता आश्रय हो गतिहीनों के !
आर्य अजातशत्रुता की उस परम्परा के स्वतःप्रमाण !
सदय बन्धु तुम विरोधियों के निर्दय सुजन अधीनों के !

व्यक्त तुम्हारा बाह्य हमारे वर्तमान का अन्तर्भाग !
किन्तु तुम्हारे अन्तरङ्ग में उठा अतीत हमारा जाग !
बापू व्यग्र भविष्य हमारा मिले तुम्हारे सुमन पराग !
भारत माता के मन्दिर में संग्रह रहे तुम्हारा त्याग !

अरे राम ! कैसे हम झेलें अपनी लज्जा उसका शोक !
गया हमारे ही पापों से अपना राष्ट्र-पिता परलोक !

: २३ :

ध्वज-वन्दना

यह पुण्य पताका फहरे !
मुक्त वायु-मण्डल में अपनी मानस-लहरी लहरे !
जय मैत्री करुणा-धारामय यह ध्वज-चक्र हमारा,
कभी क्रान्ति का सूर्य यही है कभी शान्ति शशि-तारा।
हमें विजय का सूत्र मिला है इसी चक्र के द्वारा,
रक्षक यही सुदर्शन अपना किरण कुसुम-सा प्यारा।

कालचक्र यह हाथ हमारे, लक्ष्य क्यों न थक थहरे!
यह पुण्य पताका फहरे!

कर्म-क्षेत्र हरा है अपना, ज्ञान शुभ्र मन माना,
बलि बलवती विनीति भक्ति का कल केसरिया बाना।
इस त्रियोग के तीर्थराज में हमें स्वधर्म निभाना,
अपनी स्वतन्त्रता से सबका मुक्ति मन्त्र है पाना।
सब समान भागी जीवन के यही घोषणा घहरे!
यह पुण्य पताका फहरे!

त्याग हमारा धर्म, किन्तु हम हरण कभी न सहेंगे,
दानवत्व से मानवता का वरण कभी न सहेंगे।
किसी आततायी का तुष्टीकरण कभी न सहेंगे,
और कभी भी व्यर्थ किसी का मरण कभी न सहेंगे।
वह नरता ही क्या, बर्बरता जिसके आगे ठहरे!
यह पुण्य पताका फहरे!

इस ध्वज पर जूझे स्वजनों पर ध्यान जहाँ जाता है,
मस्तक ऊँचा होने पर भी मन भर-भर आता है।
निर्भय मृत्यु वरण कर ही नर अमर कीर्ति पाता है,
ऐसे पुत्रों की ही आशा रखती भू-माता है।
भू-माता का यह अंचल-पट छाया करके छहरे!
यह पुण्य पताका फहरे!

: २४ :

गीत

(श्री सुमित्रानन्दन पन्त)

मेरा प्रतिपल सुन्दर हो,
प्रतिदिन सुन्दर, सुखकर हो;
यह पल-पल का लघु जीवन
सुन्दर, सुखकर, शुचितर हो !
हों बूँदें अस्थिर, लघुतर,
सागर में बूँदें सागर;
यह एक बूँद जीवन का
मोती-सा सरस, सुघर हो !
मधु के ही कुसुम मनोहर
कुसुमों की ही मधु प्रियतर,
यह एक मुकुल मानस का
प्रमुदित, मोदित, मधुमय हो !
मेरा प्रतिपल निर्भय हो,
निःसंशय, मंगलमय हो !

यह नव-नव पल का जीवन
प्रतिपल तन्मय, तन्मय हो !

: २५ :

मुरझाया हुआ फूल

(श्रीमती महादेवी वर्मा)

था कली के रूप शैशव,
में अहो सुखे सुमन।
हास्य करता था, खिलाती,
अङ्क में तुझको पवन ॥ १ ॥
खिल गया जब पूर्ण तू,
मंजुल सुकोमल पुष्प बन।
लुब्ध मधु के हेत मँडराने,
लगे आने भ्रमर ॥ २ ॥
स्निग्ध किरणें चन्द्र की,
तुमको हँसाती थीं सदा।
ओस मुक्ता-जाल से,
शृङ्गारती थी सर्वदा ॥ ३ ॥
वायु पंखा झल रही,
निद्रा-विवश करती तुझे।
यत्न माली का रहा,
आनन्द से भरता तुझे ॥ ४ ॥
कर रहा अठखेलियाँ,
इतरा सदा उद्यान में।
अन्त का यह दृश्य आया,
था कभी क्या ध्यान में ॥ ५ ॥
सो रहा अब तू धरा पर,
शुष्क बिखराया हुआ।

गन्ध कोमलता नहीं,
मुख मंजु मुरझाया हुआ ॥ ६ ॥
आज तुमको देखकर,
चाहक अमर आता नहीं।
वृक्ष भी खोकर तुझे,
हा, अश्रु बरसाता नहीं ॥ ७ ॥
जिस पवन ने अंक में,
ले प्यार था तुझको किया।
तीव्र झोंके से सुला,
उसने तुझे भू पर दिया ॥ ८ ॥
कर दिया मधु और सौरभ,
दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन ॥ ९ ॥
मत व्यथित हो पुष्प किसको,
सुख दिया संसार ने।
स्वार्थमय सबको बनाया,
है यहाँ करतार ने ॥ १० ॥
विश्व में हे पुष्प ! तू,
सबके हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व फिर भी,
हाय, हरखाता रहा ॥ ११ ॥
जब न तेरी ही दशा पर,
दुख हुआ संसार को।
कौन रोयेगा सुमन,
हम-से मनुज निस्सार को ॥ १२ ॥

: २६ :

एक हमारा देश

(श्री सियारामशरण गुप्त)

एक हमारा ऊँचा झण्डा एक हमारा देश,
इस झण्डे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश्य।
देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतन्त्र प्रकाश,
फैला है सब ओर एक-सा एक अतुल उल्लास।
कोटि-कोटि कण्ठों में कूजित एक विजय विश्वास,
मुक्त पवन में उड़ उठने की एक अमर अभिलाष।
सबका सुहित, सुमङ्गल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश।
कितने वीरों ने कर-करके प्राणों का बलिदान,
मरते-मरते भी गाया है, इस झण्डे का गान।
रक्खेंगे ऊँचे उठ हम भी, अक्षय इसकी आन,
चक्खेंगे इसकी छाया में, रस-विष एक समान॥
एक हमारी सुख-सुविधा है, एक हमारा क्लेश,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश॥
मातृभूमि की मानवता का जागृत जय-जयकार,
फहर उठे ऊँचे-से-ऊँचा यह अविरोध उदार।
साहस अभय और पौरुष का यह सजीव संचार,
लहर उठे जन-जन के मन में सत्य-अहिंसा-प्यार।
अगनित धाराओं का संगम, मिलन-तीर्थ-सन्देश,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश।

: २७ :

आओ, नव निर्माण करें

(श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')

आओ, हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्माण करें;
आज उछालें नई तरंगें, जग में नूतन प्राण भरें !

: १ :

इस सामाजिक गलित-कुष्ट का ध्वंस करें, विध्वंस करें
आओ, इस अभिशाप-पाप को हम सब मिल निर्वंश करें;
फैले हैं कीटाणु सड़न के, हम इनके सब अंश हरें
जग में आज नये भेषज का हम सब नवल विधान करें !
आओ, हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्माण करें !

: २ :

मानवता का यह विराट् तन पूति-गन्ध संयुक्त हुआ
कोढ़ी है यह नर-नारायण, सब देवत्व विलुप्त हुआ;
सड़ा हृदय, मस्तिष्क सड़ चला, अंग-अंग से कोढ़ चुआ
आओ, हम इस मानवता को नूतन जीवन-दान करें !
आज उछालें नई तरंगें जग में नूतन प्राण भरें !

: ३ :

किये घाव किसने कि सड़े हैं जो इस मानव के तन पर ?
किसके हैं ये व्रण कि हुए हैं अंकित मानव के मन पर;
इसका तो दायित्व-भार है अरे हमीं सब जन-गन पर
हमीं पातकी हैं ! किस-किसका हम गुण-दोष बखान करें !
छोड़ो ये सब दोष-कथाएँ, आओ नव निर्वाण करें !

: ४ :

जिसमें मानव की छवि थी वह चित्राधार बना हिय-भ्रम
हाय वही आधेय हो गया, जो था इक आधार स्वयं;
सामाजिकता की चौखट, ही बनी आदरास्पदा परम
आओ, तोड़ें यह चौखट, हम नवल चित्र निर्माण करें !
आओ, हिय में भरें उमंगें, आओ नव निर्माण करें !

: ५ :

आज महान् कर्म-आमन्त्रण हमें मिला है अम्बर से
धनुष-यज्ञ का आज निमन्त्रण आया विजय-स्वयंवर से;
करके मुक्त प्राण, मन, तन, सब, सदियों के आडंबर से
चलो, चलें हम विजय-वरण हित, नूतन शर-संधान करें !
आओ, हिय में भरें उमंगें, जग में नूतन प्राण भरें !

: ६ :

प्यासे, धुँधले मटमैले-से, दृग में भर लें विजय-छटा
और गलित गातों में भर लें, विद्युत-शक्ति निपट विकटा;
क्षण में ही विलीन होगी यह अन्धकार घनघोर घटा
चलो, चलें हम अदम उछाही, तुमुल युद्ध की तान भरें !
आज उछालें नई तरंगें, आओ नव निर्माण करें !

: ७ :

यह, देखो, योगीश्वर गिरिवर, अटल हिमाचल तुङ्गशिखर
यह, देखो, उसकी गोदी में, गंग खेलती बिखर-बिखर;
गंगा-यमुना-सरयू-सतलज, व्यास चली कल-कल ध्वनि कर
आओ, अवलोकें यह शोभा, आओ हृदय उड़ान भरें !
आज उछालें नई तरंगें, आओ नव निर्माण करें !

: ८ :

यह अपना पुराण विन्ध्याचल, ये सब औघट घाट निरे
भारत के पूरब-पश्चिम के ये दो भीम कपाट निरे;
यह सतपुड़ा और ये नागा, खसिया शैल विराट निरे
कहते हैं आओ हम सब मिल, ऊँचा विजय-निशान करें !
आज उछालें नई तरंगें, आओ नव निर्माण करें !

: ६ :

ब्रह्मपुत्र दामोदर नद यह, यह कृष्णा, यह कावेरी
आज सभी यह हमसे कहते, लगा रहे हो क्यों देरी ?
जीवन की सुलगा दो ज्वाला, कर दो भस्म कलुष ढेरी
सुनकर यह सन्देश, भीतियाँ, मन से क्यों न प्रयाण करें !

: २८ :

हिन्दुस्थान हमारा है !

कोटि-कोटि कंठों से निकली, आज यही स्वर-धारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !
जिस दिन सबसे पहले जागे नव सिरजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,
जिस दिन नभ में तारे छिटके जिस दिन सूरज-चाँद बने,
तब से है यह देश हमारा यह अभिमान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !
जिस क्षण से जड़ रज-कण गतिमय होकर जंगम कहलाये,
जबकि हँसी प्रथमा ऊषा वह जब कि कमल-दल मुसकाये,
जब मिट्टी में चेतन चमका प्राणों के झोंके आये,
है तब से यह देश हमारा यह मन-प्राण हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने,
इसी नभ तले उसने देखे शत-शत नवल सृजन-सपने,
यहाँ उठे 'स्वाहा' के स्वर औ' यहाँ 'स्वधा' के मन्त्र बने,
ऐसा प्यारा देश पुरातन ज्ञान-निधान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

विन्ध्य, सतपुड़ा, नागा, खसिया ये दो औघट-घाट महा,
भारत के पूरब-पश्चिम के, ये दो भीम कपाट महा,
तुङ्ग शिखर चिर अटल-हिमालय, है पर्वत-सम्राट् यहाँ,
यह गिरिवर बन गया युगों से विजय-निशान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

क्या गणना है कितनी लम्बी हम सबकी इतिहास-लड़ी,
हमें गर्व है कि है बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी,
हमने बहुत बार सिरजी हैं कई क्रान्तियाँ बड़ी-बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

है आसन्नभूत अति उज्ज्वल है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विहँस रही है विजय हमारी मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे यही विधान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है!

: २९ :

शोषितों का गान

(श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द')

श्वासों की सारी शक्ति लगाकर अपनी,
औरों की जय का शंख बजाने वाले।

हम चिर अभाव का नरक बना निज जीवन,
औरों के हित सुख-स्वर्ग जलाने वाले ॥
हम पद्मानल से छिपे विश्व-जीवन में,
अपने ऊपर वैभव के कमल खिलाते।
शोभा, सौरभ, मधु सब बाहर बँटते हैं,
हम पंक-गर्त्त में, भीतर गलने जाते ॥
ऋषियों को हमने हव्य, गव्य पहुँचाया,
सम्राटों के इंगित पर सर कटवाया।
धनपतियों की लिप्सा-ज्वाला में पल-पल,
तिल-तिल जल-जल प्राणों का रक्त सुखाया ॥
शोणित से सदा हमारे सिंचते आये,
साम्राज्यों के विस्तार, कोष चिर-संचित।
अगणित आडम्बर धर्म और दर्शन के,
हम रहे, किन्तु अब तक वंचित-के-वंचित ॥
भूखे नंगे रह अन्न-वस्त्र की हमने,
औरों के हित है राशि अनन्त लगाई।
दासत्व-शृङ्खला अपने लिए मिली है,
सारे जीवन की अपनी यही कमाई ॥
जो बने हमारे श्रम से धन के स्वामी,
हम उनके द्वार भिखारी बनकर आते।
उनके फेंके कुछ टुकड़ों पर आपस में,
सर्वस्व हीन हम कुत्तों-से लड़ जाते ॥
विकसित कर लड़ने की यह कला हमारी,
वे सज्जित सैनिक क्रमशः हमें बनाते।
उनकी उमंग पर निरपराध मनुजों के,
अज्ञात देश पर हम रण-वज्र गिराते ॥
गृहिणियाँ हमारी इधर विकल, औरों की,

पत्नियाँ उधर हम विधवा बना रुलाते।
शिशु इधर हमारे हमें न पाकर रोते,
औरों के शिशु हम उधर अनाथ बनाते॥
बर्बरता-पशुता की अदम्य रण-तृष्णा,
पशु हमें बनाकर भी अतृप्त रह जाती।
संहार-साधनों का नव-नव अन्वेषण,
वह नित्य आसुरी प्रतिभा से करवाती॥
अज्ञान और भय कृषक रूप में हम हैं,
दुःख-दैन्य सहन करते वरदान समझकर।
अपनी ही धरती पर श्रम करते रहते,
औरों के बनकर क्रीत दास जीवन-भर॥
धनिकों के घोड़ों पर झूलें पड़ती हैं,
हम कड़ी ठंड में वस्त्र-हीन रह जाते।
वर्षा में उनके श्वान छाँह में सोते,
हम गीले घर में जगकर रात बिताते॥
अनुभव पकवानों के अजीर्ण का लेते,
दुर्भिक्ष-दिनों में जब वे निज भवनों में।
हम क्षुधा-अग्नि की आहुति चुनते फिरते,
गोबर से निकले हुए कदन्न-कणों में॥
इस श्रमिक रूप में हृदय-हीन शोषण की—
बलि हैं, ढोया करते हैं जीवन रूखा।
पीला मुख, दुर्बल देह, कंठ सूखा है,
अधफटे वस्त्र हैं मलिन, पेट अधभूखा॥
आती दीपावलि, नई ज्योति लाती है,
आता बसन्त, जग नई कान्ति पाता है।
जड़ता से तम से घिरा, किन्तु यह जीवन,
ले एक आह, फिर श्रम में लग जाता है॥

यन्त्रों के स्वामी यन्त्र समझकर हमको,
उन पर तन्मय श्रम की आज्ञा दे जाते।
हम मानव रोगी, शिशु-भूखी पत्नी ने—
चिन्तन में रत, निज अवयव कभी कटाते॥
आजीवन अपने कटे हाथ-पैरों पर,
रोने को जब हम भाग्यहीन रह जाते।
चाँदी के टुकड़े कुछ हम पर फिंकवाकर,
अपना दैनिक क्रम आके धनिक चलाते॥
हम जीवन के अगणित विभिन्न क्षेत्रों में,
नाना रूपों में वंचित हैं, पीड़ित हैं।
समता का पाया एक सूत्र, पर हमने—
"वे सब समान हैं, जो जग में शोषित हैं"॥
इस विश्व-बन्धुता में पीड़ित मानवता,
यदि आत्म-त्राण की आशा-किरण न पाती।
तो नरक-तुल्य इस जीवन में रस भरने,
क्या कभी प्रलय तक सुख की बेला आती॥

: ३० :

युवक !

(श्री उदयशंकर भट्ट)

समय के सभी साथ जीवन बदलते,
समय को बदलता हुआ तू चला चल !

: १ :

कि भर आत्म-विश्वास हर साँस में तू,
उषा के लिए हास हर श्वास में तू।

उड़ा दे सभी त्रास उच्छ्वास में तू,
बदल दे नरक के सभी दृश्य पल में,
बना दे अमृत विश्व का सब हलाहल।
समय के सभी साथ जीवन बदलते,
समय को बदलता हुआ तू चला चल !

: २ :

निराशा-तिमिर में रुका है नहीं तू,
न तूफान में भी झुका है कभी तू,
जगत्-चित्र की तूलिका है सही तू,
तुझे विश्व मदिरा पिलाये भला क्या,
स्वयं विश्व को प्राण दे औ' जिला चल।
समय के सभी साथ जीवन बदलते,
समय को बदलता हुआ तू चला चल !

: ३ :

निशा में तुझे चाँद ने पथ दिखाया,
प्रलय-मेघ ने बिजलियों को बुलाया,
थके प्राण को सिंह का स्वर पिलाया,
धरा ने बिछा दिल, नगों ने उठा सिर,
बनाया तुझे, तू नया जग बना चल।
समय के सभी साथ जीवन बदलते,
समय को बदलता हुआ तू चला चल।

: ३१ :

पथिक से

चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या ?

भँवर उठ रहे हैं सागर में,
मेघ घुमड़ते हैं अम्बर में,
आँधी औ' तूफान डगर में,

तुझको तो केवल चलना है, चलना ही है फिर हो भय क्या ?
चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या ?

इस दुनिया में कहीं न सुख है,
इस दुनिया में कहीं न दुख है,
जीवन एक हवा का रुख है,

चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या ?

अरे, थक गया ! फिर बढ़ता चल,
उठ, संघर्षों से अड़ता चल,
जीवन-विषम-पन्थ बढ़ता चल,

अड़ा हिमालय हो यदि आगे 'चढ़ूँ' कि लौटूँ यह संशय क्या ?
चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या ?

कोई रो-रोकर सब खोता,
कोई खोकर सुख से सोता,
दुनिया में ऐसा ही होता,

जीवन का क्रय मरण यहाँ पर, निश्चित ध्येय यदि फिर त्तय क्या ?
चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या ?

राखी के दिन राख

(श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी')

बहन, तड़ित-से तन पर पहने हुए घटा-सी साड़ी काली।
जिसमें जड़ी किनारी सुन्दर इन्द्र-धनुष से रंगों वाली
मृदु मलार की तान नूपुरों में तू सस्मुद बजाती आई।
भैया के सूखे मानस में रस की झड़ी लगाती आई।

सावन की पूनम की बदली
आज नया जीवन लाई है।
तू मेरे नक्षत्र जगाने
को राखी लेकर आई है।

है हरियाली-हीन मरुस्थल-सा यह जलता जीवन मेरा।
यहाँ प्रात में रात बसी है ज्योत्स्ना में है बसा अंधेरा।
धू-धू करती आँधी आती, कुटिया के तृण-पात उड़ाती।
तू क्यों आ पहुँची है, बहना, यहाँ कभी बरसात न आती।

युग बीते, बावली, हृदय की
झील पड़ी है खाली खाली।
अंगारों सी धधक रही हैं
आँखें जल बरसाने वाली।

तुझे देखकर बचपन के दिन हरे हो चले आज अचानक।
जुगनू-से फिर चमक उठे हैं पागलपन से भरे कथानक।
मैं आमों के वन में डाला करता था रेशम का झूला।
तुझे झूलते देख मयूरों का दल नहीं समाता फूला।

तरुओं की शीतल छाया में
नर्तन करते थे दीवाने।

तू आई है इन आँखों में
फिर सावन के मेघ भुलाने।
उस बरसाती नाले के तट, बहन हमारा घर था प्यारा।
कभी-कभी चौबारे तक चढ़ आती थी नाले की धारा।
घर के एक खेत के पीछे एक टेकरी थी हरियाली।
जिसके मंदिर में तू जाती थी फूलों से भरकर थाली।
कुंकुम रोली भरे मेघ थे
छाते जिस पर साँझ-सवेरे।
उस नन्दन-निकुञ्ज से लाये
यहाँ खींचकर दुर्दिन मेरे।
घर से कुछ ही दूर भरा था ताल कटोरे-सा अति सुन्दर।
जीवन में जो ज्वार उठाता था ऊपर तक जल में भरकर।
शुभ्र चाँदनी रातों में हम जिसमें खेया करते नैया।
आज बहन की आँखों में वह नैया खोज रहा है भैया।
बचपन गया, जवानी आई
आँधी मुझे उड़ाकर लाई।
ताल-तलैया नाले सूखे
पथ में भरी भयानक खाई।
पहले मैंने वीणा पकड़ी, फिर सहसा तलवार उठाई।
फिर शासन के घर का कुछ दिन बनकर रहना पड़ा जमाई।
मेरी छाया से भी नफरत करते रहते स्वजन हमारे।
भूल पड़े क्यों आज यहाँ पर चरण-कमल ये प्यारे-प्यारे।
यह तो अंगारों की बस्ती
यहाँ मरे लोगों की हस्ती।
यहाँ सुधा या सुरा नहीं है
यहाँ गरल की है अलमस्ती।
क्या था नहीं हमारे घर में सुख-वैभव या प्यार किसी का।

पर हम मुक्त नहीं पंखी से, उस पर बन्धन भार किसी का।
यह खाना-दाना अपना है, इस पर अंकित नाम किसी का।
है घर-द्वार हमारा, इस पर पहरा आठों याम किसी का।

अपनी साँसें बिकी हुई हैं
अपने गान गुलाम किसी के।
हाथ-पैर अपने हैं, पर ये
करते रहते काम किसी के।

तुझे याद होगा चन्दा-सी सुन्दर सखियाँ बचपन वाली।
उनमें कितनी हुईं परिश्रम से थक जर्जर, दुर्बल, काली।
तुझे याद होगी वह श्यामा जिससे तूने मुझे मिलाया।
बहन, राख हो चुकी कभी की उसकी कोमल कंचन काया।

ऐसे ही दिन-रात यहाँ पर
विपदाओं के झोंके आते।
तेरे भैया से कितने ही
पगले प्राण चढ़ाये जाते।

तू आई है आज बाँधने मेरे कर में राखी प्यारी।
अच्छा है मिल लिये यहाँ तो रहती चला-चली की बारी।
मेरे जीवन और मरण में केवल एक साँस का अन्तर।
शूली से भी बढ़कर होती विद्रोही की राह भयंकर।

न्याय जिसे डाकू कहता है
तू आशीष उसे देती है।
क्यों कानून-भंग का अपने
सर अपराध लिये लेती है?

क्या कहती है दुनिया भूले बहन, नहीं तुमको भूलेगी।
न्याय कहेगा तो फाँसी के झूले पर भी वह झूलेगी।
काँटों पर चलने वाले का साथ निभाने आई है वह।
भैया के बुझते प्राणों की राख हटाने आई है वह।

तो ला हृदय-रक्त से टीका
लगा, बाँध दे राखी बहना।
शीश कटाने का आमन्त्रण
है बहना, यह तेरा गहना।
सूझ नहीं पड़ता है कुछ भी क्या दूँ आज विदाई में मैं।
सब ऐश्वर्य गँवा बैठा हूँ जग के साथ लड़ाई में मैं।
उधर नज़र कर देख खुँटी पर एक पोटली पीली-पीली।
उसमें राख रखी श्यामा की क्यों करती है आँखें गीली।
राखी के दिन राख तुझे
देता हूँ, बहना, लेती जा तू।
अपना हृदय प्रज्वलित करके
इस दुनिया में आग लगा तू।

: ३३ :

जय-ध्वज

(श्री सोहनलाल द्विवेदी)

यह स्वतन्त्र भारत का जय-ध्वज, तरल तिरंगा प्यारा,
चमक रहा है नील गगन में बन जगमग ध्रुवतारा !
देख.देख अपना यह जय-ध्वज, नभ पर नित लहराता,
ऊँचा उठता अपना मस्तक जननी की जय गाता।
इस तिरंग में रँगे हमारा तन-मन-जीवन सारा,
यह स्वतन्त्र भारत का जय-ध्वज, तरल तिरंगा प्यारा !
देख-देख अपना यह जय-ध्वज, जिसने शत्रु हिलाया,
दूर गुलामी कर सदियों की जिसने अमृत पिलाया !

उमड़ रहा उत्साह हृदय में, नव जीवन की धारा,
यह स्वतन्त्र भारत का जय-ध्वज, तरल तिरंगा प्यारा !
भारत के घर-घर में फहरे यह विजय-ध्वज अपना,
पूर्ण करे सुखमय स्वराज्य का सुन्दर-सुन्दर सपना !
रचे देश वह जिस पर हो न्योछावर भूतल सारा,
यह स्वतन्त्र भारत का जय-ध्वज, तरल तिरंगा प्यारा !

: ३४ :

युगावतार गांधी

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;
जिसके शिर पर निज धरा हाथ,
उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया
झुक गये उसी पर कोटि माथ;
हे कोटिचरण हे कोटिबाहु !
हे कोटिरूप हे कोटिनाम !
तुम एकमूर्ति प्रतिमूर्ति कोटि
हे कोटिमूर्ति तुमको प्रणाम !
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की

खींचते काल पर अमिट रेख;
तुम बोल उठे, युग बोल उठा
तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर
युगकर्म जगा, युगधर्म तना;
युग-परिवर्तक, युग-संस्थापक
युग-संचालक, हे युगाधार!
युग निर्माता, युग-मूर्ति! तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार!
तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़
रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नींवें
ले नवचेतन की दिव्य दृष्टि;
धर्माडम्बर के खण्डहर पर
कर पद-प्रहार, कर धरा ध्वस्त,
मानवता का पावन मन्दिर,
निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त!
बढ़ते ही जाते दिग्विजयी!
गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणि-माणिक से
मढ़ते जननी का स्वर्ण-ताज!
तुम कालचक्र के रक्त सने
दर्शनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़-बढ़;
पिसती कराहती जगती के
प्राणों में भरते अभय दान,

अधमरे देखते हैं तुमको,
किसने आकर यह किया त्राण ?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ कर-संपुट से
तुम काल-चक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर
लिखते करुणा के पुण्य श्लोक !
कँपता असत्य, कँपती मिथ्या,
बर्बरता कँपती है थर-थर !
कँपते सिंहासन, राज-मुकुट,
कँपते, खिसके आते भू पर;
हैं अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित लुण्ठित,
सेनाएँ करतीं गृह-प्रयाण !
रणभेरी तेरी बजती है,
उड़ता है तेरा ध्वज निशान !
हे युग-द्रष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मन्त्र ?
इस राजतन्त्र के खण्डहर में
उगता अभिनव भारत स्वतन्त्र !

: ३५ :

पथ की पहचान

(श्री हरिवंशराय बच्चन)

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले ।

पुस्तकों में है नहीं
छापी गई इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों की ज़बानी,

अनगिनत राही गए इस
राह से, उनका पता क्या,

पर गए कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी,

यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान कर ले;

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

यह बुरा है या कि अच्छा
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
जब असम्भव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,

तू इसे अच्छा समझ
यात्रा सरल इससे बनेगी,

सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,

हर सफल पंथी यही
विश्वास ले इस पर पड़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान कर ले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग, बन सुन्दर मिलेंगे,

किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी यह भी अनिश्चित,

है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,

कौन सहसा छूट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा,
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन कर ले;

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता,

ये उदय होते लिये कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किन्तु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य सौ दो,

स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो
सत्य का भी ज्ञान कर ले;

पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को,
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,

रक्त की दो बूँद गिरती,
एक दुनिया डूब जाती,

आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों,
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान कर ले;

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

: ३६ :

हम दीवाने

(श्री भगवतीचरण वर्मा)

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले;
आए बनकर उल्लास अभी,
आँसू बनकर बह चले अभी;
सब कहते ही रह गए, अरे
तुम कैसे आए कहाँ चले ?
किस ओर चले ?—यह मत पूछो,
चलना है बस इसलिए चले,
जग से उसका कुछ लिये चले,
जग को अपना कुछ दिये चले;
दो बात कहीं दो बात सुनीं;
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए !
छककर सुख-दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिये चले !
हम भिखमंगों की दुनिया में
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले;
हम एक निशानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले;
हम मान-रहित, अपमान-रहित,
जी भरकर खुलकर खेल चुके;

हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाज़ी हार चले !
हम भला-बुरा सब भूल चुके,
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले,
अभिशाप उठाकर होठों पर,
वरदान दृगों से छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकने वाले,
हम स्वयम् बँधे थे, और स्वयम्
हम अपने बन्धन तोड़ चले !

: ३७ :

पतझड़

(डॉ० रामकुमार वर्मा)

यह बही हवा हलकी गति से,
पत्ते वृक्षों से झड़े मौन ।
कैसा है यह संकेत ? वृक्ष की—
शोभा हर ले गया कौन ?
अपने ही नत कंकाल-अंग को,
प्रश्न बनाकर वृक्ष वक्र ।
है पूछ रहा नभ से, जग में—
चलता रहता क्या यही चक्र ?
ये उड़े जा रहे विहग-वृन्द,
क्यों ऊँचे-नीचे बार-बार ?

जब पृथिवी ही बन रही शुष्क,
तब वे कैसे कर लें विहार ?
हरियाली लहराकर सदैव,
जो मन में भरती थी हिलोर।
वह आज सिकुड़कर बैठ गई,
है कैसा यह अभिनय कठोर ?
ये सभी दिशाएँ हुईं मौन,
उनमें उड़ती है आज धूल।
सन्ध्या के रँग में सूख गए,
कैसे गुलाब के खिले फूल !
यह एक हवा की लहर बही,
गिर पड़े और दो-चार पात।
ले रही प्रकृति संन्यास, या कि—
सन्ध्या में सोया है प्रभात।
मेरे मन में यह उठा भाव,
यदि आज सुखों का हुआ अन्त,
तो यह पतझड़ भी कभी अन्त—
पाएगा, आएगा वसन्त।

: ३८ :

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं,
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं,
सिद्धि पाकर भी तपस्या-साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

व्योम के उर में अगाध भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्व को दो बार क्या, सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर, प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का सन्देश लेकर, रात्रि के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

: ३६ :

बापू

(श्री रामधारीसिंह 'दिनकर')

संसार पूजता जिन्हें तिलक, रोली फूलों के हारों से।
मैं उन्हें पूजता आया हूँ, बापू! अब तक अंगारों से॥
अंगार हार उनका, जिनकी सुन हाँक समय रुक जाता है।
आदेश जिधर का देते हैं, इतिहास उधर झुक जाता है॥
तू सहज शान्ति का दूत, मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी।
दृग में उँडेलकर सहज शील, देखती तुझे दुनिया सारी॥
धरती की छाती से अजस्र, चिर-संचित क्षीर उमड़ता है।
आँखों में भरकर सुधा तुझे, यह अम्बर देखा करता है॥
इतिहास आँकता है गाथा, था भरत-भूमि का एक भाग।
संयोग अकारण, वहाँ कभी फुङ्कार उठे विकराल नाग॥
विष की ज्वाला से दह्यमान हो उठा व्यग्र सारा खगोल।
मतवाले नाग अशंक चले खोले जिह्वाएँ लोल-लोल॥

हंसों के नीड़ लगे जलने हंसों की गिरने लगी लाश।
नर नहीं, नारियों से होली खेलने लगा खुल सर्वनाश॥
नारी का शील गिरा खण्डित कौमार्य गिरा लोहू-लुहान।
भगवान् भानु जल उठे क्रुद्ध, चिंघाड़ उठा यह आसमान॥
पर, हिली नहीं कुरु की परिषद्, पर हिले नहीं पाण्डव सभीत।
ललकार कौंधकर चली गई रह गए सोचते धर्म-नीति॥
बापू तू कलि का कृष्ण विकल, आया आँखों में नीर लिये।
थी लाज द्रौपदी की जाती, केशव-सा दौड़ा चीर लिये॥
तू कालोदधि का महास्तम्भ, आत्मा के नभ का तुङ्ग केतु।
बापू! तू मर्त्य, अमर्त्य, स्वर्ग, पृथ्वी, भू, नभ का महा सेतु॥
तेरा विराट् यह रूप कल्पना-पट पर नहीं समाता है।
जितना कुछ कहूँ मगर, कहने को शेष बहुत रह जाता है॥
लज्जित मेरे अंगार; तिलक-माला भी यदि ले आऊँ मैं।
किस भाँति उठूँ इतना ऊपर? मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं॥
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उँगलियाँ न छू सकतीं ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार, पहुँचे तुम तक मानव विराट्॥

: ४० :

गाँव की धरती

(श्री नरेन्द्र शर्मा)

चमकीले पीले रंगों में अब डूब रही होगी धरती,
खेतों-खेतों फूली होगी सरसों, हँसती होगी धरती!
पंचमी आज, ढलते जाड़ों की इस ढलती दोपहरी में,
जंगल में नहा, ओढ़नी पीली सुखा रही होगी धरती!
इसके खेतों में खिलती हैं सींगरी, तरा, गाजर, कसूम;

किससे कम है यह, पली धूल में सोना-धूल-भरी धरती !
शहरों की बहू-बेटियाँ हैं सोने के तारों से पीली,
सोने के गहनों में पीली, यह सरसों से पीली धरती !
सिर धरे कलेऊ की रोटी, लेकर में मट्ठे की मटकी,
घर से जंगल की ओर चली होगी बटिया पर पग धरती !
कर काम खेत में स्वस्थ हुई होगी तलाब में उतर, नहा,
दे न्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार बनी माता धरती !
पक रही फसल, लद रहे चने से बूँट, पड़ी है हरी मटर,
तीमन को साग और पौहों को हरा, भरी-पूरी धरती !
हो रही साँझ, आ रहे ढोर, हैं रँभा रही गायें-भैंसें,
जंगल से घर को लौट रही गोधूली बेला में धरती !

: ४१ :

युगनेता

युवा युगनेता, तुम्हें प्रणाम !

: १ :

देह में बाल्य, देह में जरा
प्राण चिर-तरुण सदैव-नवीन,
हमारी प्राणशक्ति हो मूर्त
हृदय-सिंहासन पर आसीन,
जवाहर जिसका नाम !
युवा युगनेता, तुम्हें प्रणाम !

: २ :

'अधोमुख निर्बल निर्धन देश !'—
मंत्रयुग करता था उपहास !
'गला कागद !'—रद्दी में डाल
भुलाता गया विश्व-इतिहास !
गए तुम शिक्षा को परदेस;
किन्तु लौटे तब पाया ज्ञान !
सामने दिखा भिखारी भेस—
त्याग तन्मय कर्त्तव्य-निधान !

: ३ :

धर्म जब बना ग्लानि का ग्रास,
वैश्य के घर लेकर अवतार—
दीन देहाती का धर रूप—
स्वल्प विद्या में ज्ञान अपार—
तुम्हें दीक्षित करने प्रभु जगे,
सुलाने अंहकार - हुंकार !
पश्चिमी नयनों में नव-किरण,
हुई कर्णों में नव झंकार !—
'रूढ़ियों में सोया है सत्य,
अंध बनकर है जीवित भक्ति,
पुराणों के परदे में वेद,
दीनता में अन्तर्हित शक्ति !'
निहित तत्त्वों से झलकी ज्योति
लगी करने पर बुद्धि विरोध !
विरोधाभासों का उन्माद !—
लगा होने पर अन्तर्शोध !

: ४ :

धूलि में जिसकी लोटे नहीं,
गोद में लेकर तुम्हें समोद,
तुम्हारी बालबुद्धि की मुष्टि
सह रहा था, कह इसे विनोद !
दीर्घजीवी यह देश पुनीत
हुआ जो बापू में वपुमान,
तुम्हें देता था आशीर्वाद !—
आज भी हो पाया कुछ भान ?
पढ़े भी, गुने किन्तु दिन-रात—
विज्ञ तुम पश्चिम के विद्वान् !
प्राण भी बन जायें पाषाण,
न हो यदि अज्ञों का वरदान !

: ५ :

अमर पुरुषार्थों का यह देश
त्याग का तीर्थ, पुण्य का धाम !
पुजारी बनकर यह द्युतिपुरुष
कौन जन्मा है प्राण-प्रकाम ?—
जवाहर इसका नाम !
युवा युगनेता, तुम्हें प्रणाम !

: ४२ :

वसन्त के तीन दृश्य

(श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क')

: १ :

जब पंचम में पिक बोला,
ऋतुराज आज हैं आये !
हँसकर कलियों ने अपने,
तब मधु के कोष लुटाये !
नीड़ों में चमक उठे तब,
अगनित खग बालों के स्वर !
उन्मत्त हुईं किन्नरियाँ,
स्वागत के गाने गाकर !
पर, ओस-बिन्दु को जाने,
क्या बात कह गई आकर ?
सिहरी, ढुल पड़ी निमिष में,
नयनों से नीर बहाकर !

: २ :

पेड़ों की शाखाओं में,
जब फूट पड़े नव-पल्लव !
गा उठे विहग ऋतुपति का,
वन-उपवन में जब उत्सव !
जब चटक उठीं यौवन पा,
पुलकित मुकुलित सब कलियाँ !
लद गईं भार से मधु के,
जब विकसित कुसुमावलियाँ !

तब गिरा किनारे पथ के,
पतझड़ का पत्ता जर्जर;
हँस उठा देख सब कौतुक,
फिर दृग अपने लाया भर!

: ३ :

जब अम्बर के आँगन में,
सब चिड़ियाँ उड़ीं परस्पर!
जब हिल-मिल पत्ते सारे,
कर उठे अचानक मर-मर!
जब गूँज उठीं कानन में,
सखि, मोरों की झंकारें!
वन-वन, उपवन-उपवन में,
सखि, भ्रमरों की गुन्जारें!
तब एकाकी खग कोई
तिनकों के बन्दीघर में,
कर 'टीं टीं' चुप हो बैठा,
अपने सूने पिंजर में!

: ४३ :

उड़ चल हारिल

(श्री 'अज्ञेय')

उड़ चल हारिल, लिये हाथ में
यही अकेला ओछा तिनका—
ऊषा जाग उठी प्राची में
कैसी बाट, भरोसा किनका!

शक्ति रहे तेरे हाथों में—
छुट न जाय यह चाह सृजन की
शक्ति रहे तेरे हाथों में
रुक न जाय यह गति जीवन की ?

ऊपर ऊपर ऊपर ऊपर
बढ़ा चीरता चल दिङ्मंडल
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल !

तिनका ? तेरे हाथों में है
अमर एक रचना का साधन—
तिनका ? तेरे पंजे में है
विधना के प्राणों का स्पन्दन !

काँप न, यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
रुक न, यद्पि उपहास जगत् का
तुझको पथ से हेर रहा है ;

तू मिट्टी था, किन्तु आज
मिट्टी को तूने बाँध लिया है
तू था सृष्टि, किन्तु स्रष्टा का
गुर तूने पहचान लिया है !

मिट्टी निश्चय है यथार्थ, पर
क्या जीवन केवल मिट्टी है ?
तू मिट्टी, पर मिट्टी से उठने
की इच्छा किसने दी है ?

आज उसी ऊर्ध्वंग ज्वाल का
तू है दुर्निवार हरकारा

दृढ़ ध्वज-दण्ड बना यह तिनका
सूने पथ का एक सहारा।

मिट्टी से जो छीन लिया है
वह तज देना धर्म नहीं है
जीवन साधन की अवहेला
कर्मवीर का कर्म नहीं है !

तिनका पथ की धूल, स्वयं तू
है अनन्त की पावन धूली—
किन्तु आज तूने नभ-पथ में
क्षण में बद्ध अमरता छू ली !

ऊषा जाग उठी प्राची में—
आवाहन यह नूतन दिन का—
उड़ चल, हारिल, लिये हाथ में
एक अकेला पावन तिनका !

: ४४ :

स्वागत, नये सूर्य का स्वागत

(श्री शम्भुनाथ 'शेष')

स्वागत, नये सूर्य का स्वागत !
स्वागत नये गगन का !
घनीभूत नैराश्य-तिमिर उड़ गया,
सदाशा लहकी !
राष्ट्र-कल्पतरु पर विहगी-सी
नव-अभिलाषा चहकी !
नई उषा क्या खिली,

खिल गया स्वर्ण-कमल जीवन का
स्वागत नये गगन का !
चिर-आलस्य-प्रमाद-मुँदे
खुल गए नयन निंदियारे !
कर्म-क्षेत्र में आत्म-चेतना चमकी,
विभु छाया रे !
स्वर्ण-रश्मियाँ लगीं लुटाने
वैभव नन्दन-वन का !
स्वागत नये गगन का !
स्वप्न हुआ साकार, क्षितिज पर
सहज सत्य मुसकाया !
आसावरी अलाप ले उठी,
नया राग लहराया !
कलित-कल्पना को फिर से
आधार मिला यौवन का !
स्वागत नये गगन का !
लोक-भावना के विकास की
मंगल वेला आई !
मानव का विश्वास उभरकर
बना उषा-अरुणाई !
बालारुण की किरणें लाईं
अभ्युदय जन-जन का !
स्वागत नये गगन का !
स्वागत, नये सूर्य का स्वागत !
स्वागत नये गगन का !

: ४५ :

आराम करो !

(श्री गोपालप्रसाद व्यास)

एक मित्र मिले, बोले, "लाला !
तुम किस चक्की का खाते हो ?
इस छै छटाँक के राशन में भी
तौंद बढ़ाये जाते हो !
क्या रक्खा मांस बढ़ाने में
मनहूस, अकल से काम करो।
संक्रान्ति-काल की बेला है
मर मिटो जगत् में नाम करो।"
हम बोले, रहने दो लिक्चर
पुरुषों को मत बदनाम करो।
इस दौड़-धूप में क्या रक्खा,
आराम करो, आराम करो !
आराम ज़िन्दगी की कुन्जी,
इससे न तपेदिक होती है।
आराम-सुधा की एक बूँद
तन का दुबलापन खोती है।
आराम शब्द में 'राम' छिपा
जो भव-बन्धन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो
विरला ही योगी होता है।
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ,
मेरे अनुभव से काम करो !

ये जीवन, यौवन क्षणभंगुर
आराम करो, आराम करो!
यदि करना ही कुछ पड़ जाये
तो अधिक न तुम उत्पात करो!
अपने घर में बैठे-बैठे
बस, लम्बी-लम्बी बात करो!
करने-धरने में क्या रक्खा,
जो रक्खा बात बनाने में।
जो होठ हिलाने में रस है
वह कभी न हाथ चलाने में।
तुम मुझसे पूछो बतलाऊँ—
है मज़ा मूर्ख कहलाने में।
जीवन-जागृति में क्या रक्खा,
जो रक्खा है सो जाने में!
(क्योंकि) तुम चतुर बनो चाहे जितने
वे बुद्धू ही बतलायेंगी।
दो पैसे की तरकारी पर
लाखों ही बात सुनायेंगी।
कह देंगी तुमसे तो अच्छा,
लड़का सौदा ले आता है।
तुम छै बच्चों के बाप हुए
कुछ आता है न जाता है!
मैं यही सोचकर, पास अकल के
कम ही जाया करता हूँ।
जो बुद्धिमान जन होते हैं;
उनसे कतराया करता हूँ।
दीये जलने के पहले ही

घर में आ जाया करता हूँ।
जो मिलता है खा लेता हूँ
चुपके सो जाया करता हूँ।
मेरी गीता में लिखा हुआ—
सच्चे योगी जो होते हैं।
वे कम-से-कम बारह घण्टे
तो बेफिक्री से सोते हैं।
अदवायन खिंची खाट में जो
पड़ते ही आनन्द आता है।
वह सात स्वर्ग, अपवर्ग, मोक्ष से
भी ऊँचा उठ जाता है।
जब निद्रा-भक्त लगा लुङ्गी
लम्बी टाँगें फैलाता है।
तो सच कहता हूँ स्वर्ग
हाथ से दो अंगुल रह जाता है।
जब नरम गुदगुदे गद्दे पर
चादर सफेद बिछ जाती है।
तो ऐसा लगता है, यू० पी० में
पन्त-मिनिस्ट्री आती है।
जब सुख की नींद कढ़ा तकिया,
इस सर के नीचे आता है।
तो सच कहता हूँ इस सर में
इंजन जैसे लग जाता है।
मैं मेल ट्रेन हो जाता हूँ
बुद्धि भी फक-फक करती है।
भावों का रश हो जाता है
कविता सब उमड़ी पड़ती है।

जब हिन्दी का कवि पड़ा-पड़ा
खटिया पर करवट लेता है।
तो बिना कलम, कागज धरती-
आकाश एक कर देता है।
उस वक्त पलंग पर की मक्खी
भी चन्द्रमुखी बन जाती है।
झींगुर की भी आवाज़
पायलों का धोखा दे जाती है।
मैं औरों की तो नहीं, बात
पहले अपनी ही लेता हूँ।
मैं पड़ा खाट पर बूटों को
ऊँटों की उपमा देता हूँ।
मैं खटरागी हूँ मुझको तो
खटिया में गीत फूटते हैं।
छत की कड़ियाँ गिनते गिनते
छन्दों के बन्ध टूटते हैं।
मच्छर का इंजैक्शन लगते
ही जो चेतनता आती है।
वह ऐसी पाकिस्तानी है
छन्दों में कही न जाती है।
मैं इसीलिए तो कहता हूँ
मेरे अनुभव से काम करो!
यह खाट बिछा लो आँगन में
लेटो, बैठो, आराम करो!

जय

(श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')

भारति, जय, विजय करे,
कनक - शस्य - कमल धरे !

लंका पदतल - शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे ।

तरु - तृण - वन - लता - वसन
अञ्चल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल - धार हार गले ।

मुकुट शुभ्र हिम - तुषार
प्राण - प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शत मुख-शतरव-मुखरे !

भारति, जय, विजय करे !
कनक - शस्य - कमल धरे !

लेखक-परिचय

गद्य खण्ड

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू का नाम कौन भारतीय नहीं जानता। उनकी मिट देश-भक्ति तथा अक्षुण्ण बलिदान-भावना प्रत्येक भारतीय के दय में बसी हुई है। राष्ट्र के प्रति उनका त्याग आदर्श तथा अनु- रणीय है। इस लेख में उन्होंने गांधीजी से अपनी सबसे पहली भेंट उल्लेख किया है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

भारत की स्वतन्त्रता का संघर्ष संसार की क्रान्तियों के इतिहास बेजोड़ है। उसी संघर्ष के समर्थ सेनानी पण्डित जवाहरलाल नेहरू विश्व की विमल विभूति हैं। भारत को विश्व के अन्य देशों के मान सुखी एवं समृद्ध देखने की उनकी साध उनके प्रत्येक कार्य-कलाप छिपी हुई है। उन्होंने बचपन की झाँकी इस लेख में दी है, जो लकों को एक प्रेरणा का काम देगी।

श्री प्रेमचन्द

उपन्यास-सम्राट् बा० प्रेमचन्द्र का हिन्दी-साहित्य के निर्माण में र्याप्त योग है। उनकी कहानियाँ तथा उपन्यास राष्ट्रीय जागरण के

तथा आलोचना-शक्ति अद्भुत थी। 'आलस्य और दृढ़ता' नामक पाठ में उन्होंने छात्रों के लिए एक जीवनप्रद सन्देश दिया है।

आचार्य काका कालेलकर

काका कालेलकर गांधीवादी विचार-धारा के उन्नायक तथा सत्सा-हित्य के सर्जक के रूप में विख्यात हैं। सार्वजनिक सेवा के पथ पर अग्रसर होकर आपने राष्ट्रीय संग्राम में भी पर्याप्त भाग लिया था। आप स्वभाव से ही भ्रमणशील एवं गम्भीर अन्वेषक हैं। अपनी हिमालय-यात्रा के सम्बन्ध में आपने एक पुस्तक भी लिखी है। यह लेख उसी पुस्तक से लिया गया है। छात्रों के ज्ञान-वर्द्धन में यह सहायक होगा।

श्री धर्मवीर एम० ए० (1959)

श्री धर्मवीर जी मुख्यतः उर्दू के पत्रकार हैं। उन्होंने वर्षों तक 'हिन्दू' नामक उर्दू दैनिक का सम्पादन किया है। इधर कुछ वर्षों से आपने हिन्दी में भी लिखना प्रारम्भ किया है, और अब तक हिन्दी में भी उत्कृष्टतम साहित्य का सृजन किया है। स्वभावतः भ्रमणशील होने के कारण उनकी प्रवृत्ति शिकार की ओर भी हुई; जिसका पुनीत परि-णाम यह लेख है।

श्री देवीदत्त शुक्ल

शुक्लजी वर्षों तक हिन्दी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक रह चुके हैं। हिन्दी-गद्य की नवीन शैली के लेखकों के निर्माण में आपका विशेष हाथ है, उनके गम्भीर ज्ञान तथा खोज का परिचय पाठकों को इस लेख में मिलेगा। इसमें उन्होंने समुद्र में रहने वाले जीवों के विषय में विशेष ज्ञानवर्द्धक बातें लिखी हैं।

माननीय बाबू श्रीप्रकाश

बाबूजी का नाम भी हमारे पाठकों के लिए नया नहीं। वह एक प्रमुख देश-सेवक तथा अध्ययनशील लेखक हैं। कई वर्षों तक आपने बनारस से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'आज' का सम्पादन बड़ी सफलतापूर्वक किया था। इधर राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण आप साहित्यिक क्षेत्र से विरक्त-से हो गए हैं। आजकल आप मद्रास प्रदेश के गवर्नर के पद पर प्रतिष्ठित हैं। नागरिकता के सम्बन्ध में आपके ये विचार माननीय हैं।

राष्ट्रपिता गांधी

महात्मा गांधीजी का नाम भारत में ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व में युग-युग तक अमर रहेगा। भारत को पराधीनता के पाशविक पाश से मुक्त कराने के लिए उन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही से जो लोहा लिया, वह विश्व के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ गया है। इस लेख में उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी कस्तूरबा के जीवन में अपने अहिंसात्मक सफल प्रयोगों की चर्चा की है। प्रेरणा तथा स्फूर्ति की दृष्टि से यह पाठक-छात्रों के लिए अनुकरणीय है।

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

श्री सुमनजी नई पीढ़ी के हिन्दी-लेखकों में बहुमुखी प्रतिभा लेकर जन्मे हैं। आप एक उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ सफल गद्य-लेखक भी हैं। आपको अभी पिछले दिनों उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा तीन पुस्तकों पर पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय के जीवन तथा कार्यों पर प्रभाव डालने वाला यह लेख उनकी 'नये भारत के निर्माता' नामक पुस्तक से लिया गया है।

श्री सन्तराम बी० ए०

श्री सन्तराम बी० ए० हिन्दी के पुराने लेखकों में हैं। पंजाब में हिन्दी-भाषा और साहित्य के प्रचार तथा प्रसार में आपने बड़ा ही उल्लेखनीय कार्य किया है। हिन्दी-साहित्य की कोई धारा ऐसी नहीं, जो आपकी लेखनी से अछूती रही हो। यह आपकी सबसे बड़ी विशेषता है कि जो भी आपने लिखा, वह उस विषय की गहराई तक पैठकर ही लिखा। मनोरंजक शैली तथा सरल शब्द-व्यञ्जना उनकी विशेषता है। गम्भीर-से-गम्भीर विषय को भी वह सरल-से-सरल भाषा में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। इस लेख में उन्होने हमारे दैनिक स्वास्थ्य के विषय में अद्भुत जानकारी दी है।

श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन जी हिन्दी के उत्कृष्टतम कहानीकार तथा नाटककार के रूप में विख्यात हैं। वर्षों तक उन्होंने पत्रकार के रूप में पंजाबी जनता की उल्लेखनीय सेवा की थी। आजकल आप फिल्म-संसार में ही निश्चित रूप से चले गए हैं। पहले आप भी उर्दू में ही लिखते थे। आपने हिन्दी में नई शैली का प्रचलन अपनी कहानियों द्वारा किया। 'मेरा देश' नामक पाठ उनकी इस चुटीली शैली का सजीव प्रमाण है। प्रेरणा की दृष्टि से यह लेख अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उसके सम्बन्ध में उनके ये उद्‌गार निश्चय ही छात्रों के ज्ञानवर्द्धन में सहायक होंगे।

पद्य खण्ड

प्राचीन

महात्मा कबीर

महात्मा कबीर हिन्दी के रहस्यवादी कवियों में अग्रणी रहे हैं। उनके दोहों तथा पदों में नीति तथा शिक्षा कूट-कूटकर भरी मिलती है। साथ ही हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य तथा ईश्वराराधन के प्रति भी वह पूर्ण-तया सजग रहे हैं। उनके ये दोहे छात्रों के लिए स्मरणीय तथा मन-नीय है।

भक्त सूरदास

हिन्दी में भक्ति तथा वात्सल्य की पावन सरिता बहाने वाले सूर-दास हमारे जीवन में इतने घुल-मिल गए हैं कि वह युग-युग तक अमर रहेंगे। कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन उन्होंने वात्सल्य में इतना डूबकर लिखा है कि देखते ही बनता है।

महाकवि तुलसीदास

महाकवि तुलसी की रामायण से कौन भारतवासी परिचित नहीं। उनकी रामायण आज भारत के गाँव-गाँव में पूर्ण श्रद्धा तथा भक्ति से पढ़ी जाती है। इस पुस्तक में इसी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ से लिया गया एक अंश है, जिसमें लक्ष्मण के शक्ति लगने के बाद हनुमान के संजीवनी बूटी लाने का वर्णन है,। तुलसी के दोहे तथा भक्ति-प्रेरक कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं।

मीराबाई

प्रेम की पीर की गायिका मीरा अपने दर्द-भरे गीतों से आज हमारे समाज के रोम-रोम में समाई हुई हैं। उनकी भक्ति अविचल निष्कम्प

दीप की भाँति सदा जलती रहने वाली है। उनके 'गिरधर गोपाल' निश्चय ही हिन्दी-कविता के अमर आलोक-स्तम्भ हैं।

गुरु नानक

गुरु नानक अपने सुधारवादी उदार दृष्टिकोण के लिए चिर-विख्यात हैं। जीवन में सरलता तथा सादगी के वह सदा ही उपासक रहे। सिख-पन्थ के निर्माण तथा पोषण में उनका प्रमुख हाथ था। भगवान् की स्तुति इस पाठ में उन्होंने अत्यन्त अनूठे ढंग से की है।

रहीम

रहीम की नीति हमारे जन-जीवन में ऐसी व्यापी है कि उसे अनेक प्रयत्न करने पर भी हम दृष्टि से तिरोहित नहीं कर सकते। सरस और सरल शब्दावली में गम्भीर-से-गम्भीर भाव भर देना उनकी अपनी विशेषता है। मुसलमान होते हुए उन्होंने हिन्दी-कविता तथा साहित्य की जो सेवा की है, वह प्रशंसनीय है।

बिहारी

कृष्ण की नवधा भक्ति के गायक बिहारीलाल केवल शृङ्गार के ही कवि नहीं थे। उन्होंने उनके अनेक रूपों की विविध प्रकार से उपासना की है। उनके दोहों की एक बड़ी विशेषता यह है कि 'खाँड की रोटी' को जिधर से भी तोड़ोगे, उधर से ही मीठी निकलेगी।

रसखान

हिन्दी के मुसलमान कवियों में 'रसखान' ने कृष्ण-भक्ति के जिस काव्य यी सृष्टि की है वह अनुपमेय है। उनकी कल्पना तथा सूझ निराली थी, जो उन्होंने कृष्ण की महिमा के वर्णन में शेष, महेश, गणेश, दिनेश तथा सुरेश को नित्य-प्रति लीन दिखाया है।

वृन्द

वृन्द कवि लोक-नीति में विख्यात कवि थे। उनकी रचनाओं में लोक-जीवन के सारे अंगों पर प्रकाश डालने वाली सूक्तियाँ प्रचुर परिमाण में भरी पड़ी हैं। कर्तव्य के प्रति पूर्ण सजग रहकर संसार में सफलता प्राप्त करने का मन्त्र आपकी कृतियों से मिलता है। इन दोहों से छात्र विशेष लाभान्वित हों, ऐसी हमारी साध है।

अर्वाचीन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माताओं में अग्रणी थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने कविता के अतिरिक्त नाटक भी अत्यन्त सफलता से लिखे हैं। उन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में समान सफलता के साथ लिखा था। उन्होंने राष्ट्र-प्रेम की धारा हिन्दी में सर्वप्रथम अपनी कृतियों के द्वारा ही बहाई थी। इस पाठ में उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्रण बड़ी ही मार्मिक शैली में करके जागरण का भैरव शंख फूँका है।

सत्यनारायण कविरत्न

ब्रज-कोकिल सत्यनारायण जी देश-भक्ति के गायक कवियों में से थे। उन्होंने पद्यादि बहुत कम लिखा है, तथापि जो भी उन्होंने लिखा, वही उन्हें अमर करने के लिए पर्याप्त है। 'मातृभूमि' शीर्षक कविता में उन्होंने वन्दना का एक नवीन प्रकार प्रस्तुत किया है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

हिन्दी-साहित्य के निर्माण में जिन कवियों का विशेष हाथ है, उनमें श्री प्रसादजी प्रमुख थे। प्रसाद जी ने अपनी चतुर्मुखी प्रतिभा

द्वारा हिन्दी के भाण्डार को समृद्ध किया था। अपनी कविताओं, नाटकों तथा उपन्यासों में उन्होंने भारत के अतीत गौरव की झाँकी बड़ी ही ओजस्वी भाषा में प्रस्तुत की है। छात्रों को उनकी इन कविताओं से इसका परिचय भली भाँति मिल जायगा।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी खड़ी बोली हिन्दी-कविता के निर्माता कवि के रूप में विख्यात हैं। उनका 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य हिन्दी-साहित्य का अमर रत्न है। अपने चौपदों में उन्होंने लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग जिस सफलता से किया है, वह साहित्य में एक नई दिशा का द्योतक है। इस कविता में उन्होंने 'कर्मवीरता' का आदर्श हमारे सम्मुख रखा है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

श्री चतुर्वेदी जी राष्ट्रीय जागरण के सन्देशवाहक कवि के रूप में विख्यात हैं। जीवन-भर उन्होंने देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए ही संघर्ष किया है। उनके काव्य में देश के प्रति मर मिटने की साध कूट-कूटकर भरी है। विद्यार्थियों के लिए ये दोनों कविताएँ स्फूर्तिदायक सिद्ध होंगी, ऐसी हमारी धारणा है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती चौहान का काव्य वीरता का मूर्त रूप है। उनकी 'झाँसी की रानी' शीर्षक कविता ने ही उन्हें सदा-सर्वदा के लिए अमर कर दिया है। राष्ट्रीय भावों की विमल गंगा बहाने में श्रीमती चौहान के काव्य ने भगीरथ काम किया है। वह जीवन में यथार्थ की उपासिका थीं, इसी कारण उन्होंने जो कुछ भी लिखा, वह गम्भीर अनुभूति से ओत-प्रोत है। प्रेरणा की दृष्टि से उनका काव्य उत्कृष्ट कहा जा सकता है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी

श्री त्रिपाठी जी जहाँ लोक-गीतों के संग्राहक तथा हिन्दी-साहित्य के अन्वेषक समालोचक हैं, वहाँ एक लोकप्रिय कवि भी हैं। उनके 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' काव्यों ने भारतीय नवयुवकों को नव-जीवन का उत्साहप्रद सन्देश प्रदान किया है। 'मानसी' में उनकी राष्ट्रीय कविताएँ संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त बाल-साहित्य का सृजन भी उन्होंने सफलतापूर्वक किया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

श्री गुप्त जी 'राष्ट्र-कवि' के रूप में हिन्दी-जगत् में विख्यात हैं। उनकी ख्याति सर्वप्रथम 'भारत-भारती' के कारण हुई। इस ग्रन्थ में भारत के अतीव गौरव की झाँकी प्रस्तुत करके देश को उत्थान का नव सन्देश दिया है। उनके 'साकेत' तथा 'यशोधरा' नामक काव्य भी इसी दिशा के बोधक हैं। राष्ट्रीय जागरण का पावन सन्देश उनकी प्रायः सभी रचनाओं में कूट-कूटकर भरा होता है।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री पन्त जी छायावाद के प्रवर्तक कवि हैं। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ जीवन में नवीन सौन्दर्य की भावना का समावेश करने के उद्देश्य को लेकर लिखी गई हैं। बाद में उनकी रचनाओं का दृष्टिकोण ही बदल गया। आजकल तो आप जीवन को पूर्णतः सांस्कृतिक दृष्टि-कोण से ही अपनी कविता में चित्रित करते हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा हिन्दी की आधुनिक मीरा हैं। उनकी सारी रचनाएँ प्रायः रहस्यवाद से प्रभावित हैं। 'प्रेम की पीर' को उन्होंने रहस्य के आवरण में इस प्रकार व्यक्त किया है कि काव्य का सौन्दर्य

ग्रौर भी निखर उठा है। निराशा तथा वेदना के चित्र ग्रापके काव्य की ग्रनुपम विशेषताएँ हैं।

श्री सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण जी ग्रपने बड़े भाई श्री मैथिलीशरण गुप्त की भाँति ही लोकप्रिय कवि के रूप में विख्यात हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जिस तन्मयता से पद्य-रचना करते हैं, उसी सफलता से गद्य भी लिखते हैं। उनकी रचनाग्रों में भी देश के ग्रतीत गौरव की झाँकी तथा उसका गुण-गान देखने को मिलता है।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

श्री नवीन जी प्रलय के सन्देश-वाहक काव्य के स्रष्टा कवि हैं। उनकी कविताएँ जीवन को भैरवी-निनाद से ग्रावृत करने वाली हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विप्लव के गीत ग्रापने जिस तन्मयता से लिखे हैं वैसा ही ग्रनन्त ग्रानन्द ग्रापकी रहस्यवादी तथा हृदयवादी रचनाग्रों से मिलता है।

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

श्री मिलिन्द जी समाजवादी विचार-धारा से ग्रोत-प्रोत काव्य का सृजन करने वाले सफल कवि हैं। पहले ग्रापके काव्य की दिशा रहस्योन्मुख थी। बाद में वह राष्ट्रीय जागरण का भैरव मन्त्र फूँकने की ग्रोर बढ़ी ग्रौर ग्राजकल वह वर्ग-संघर्ष की पृष्ठ-भूमि पर ही ग्रपने काव्य की रचना कर रहे हैं। किन्तु इसका यह ग्राशय कदापि नहीं कि उनका काव्य कोरा प्रचारात्मक है। जीवन को नव-निर्माण की दिशा की ग्रोर ग्रग्रसर करना ही उनका एक-मात्र लक्ष्य है। इस कविता में यही भावना मूर्त हुई है।

श्री उदयशंकर भट्ट

भट्ट जी हृदयवादी कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। जीवन की विभीषिकाओं के प्रति कटु व्यंग्य करके मन, मस्तिष्क तथा हृदय को स्वस्थ भोजन देना ही उनके काव्य की चरम सीमा है। आजकल उन्होंने राष्ट्र-वन्दना की भी कुछ रचनाएँ की हैं। युवकों को उद्बोधन देने वाली यह कविता छात्रों के लिए विशेष रूप से उपादेय है।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रेमी जी वेदनावादी कवि के रूप में हिन्दी में आये। बाद में उनके काव्य की दिशा बदल गई। सांसारिक विषमताओं से प्रताड़ित कवि ने विद्रोह की वंशी बजाई और राष्ट्र-प्रेम के प्रति युवकों को ललकारा। 'राखी के दिन राख' शीर्षक उनकी कविता में राष्ट्रीय संग्राम में जूझकर अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने वाले एक युवक की आत्म-कहानी है, जो हमारे सामाजिक वैषम्य को प्रकट करती है।

श्री सोहनलाल द्विवेदी

द्विवेदी जी गांधीवादी विचार-धारा के उन्नायक कवियों में से हैं। उन्होंने जिस सफलता तथा तन्मयता से ऐसी कविताएँ की हैं, वैसी ही लगन से बाल-साहित्य का भण्डार भरने वाली रचनाएँ भी लिखी हैं। इस पुस्तक की दोनों ही कविताएँ छात्रों को नवीन प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं।

श्री हरिवंशराय 'बच्चन'

बच्चन जी का नाम हालावाद के कवि के रूप में विख्यात है। जब से देश की तरुणाई ने अँगडाई ली है, तब से उनकी कविता की दिशा भी बदल गई है। भारत-विभाजन और गांधीजी के बलिदान के बाद तो उनका दृष्टिकोण और भी परिवर्तित हो गया, जिसका उज्ज्वल

परिणाम इस पुस्तक की कविता है। इसमें युवकों को पथ पहचानने का आह्वान है।

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्री वर्मा जी हिन्दी में दीवानेपन की धारा के प्रवर्तक कवि के रूप में आये और धीरे-धीरे नव-निर्माण के गायक बन गए। वैसे उनका काव्य विशुद्ध वेदनावाद से प्रभावित है। वह जीवन में वेदना को सहेज-कर चलने में अमिट विश्वास रखते हैं। उनकी कविता में मस्ती तथा अल्हड़पन की झलक यत्र-तत्र देखने को मिलती है।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा

डॉक्टर रामकुमार वर्मा हिन्दी-कविता के रहस्यवादी पक्ष के अग्र-दूत कवि के रूप में चिर-प्रख्यात हैं। उनकी समस्त रचनाओं में सांसारिक उपकरणों को उपादान बनाकर जो पीड़ा, वेदना अनुभूति प्रति-फलित हुई है, वह अद्‌भुत है। वह कुशल कवि होने के साथ-साथ सफल नाटककार एवं गम्भीर आलोचक भी हैं। इस पुस्तक की उनकी दोनों कविताओं में उनकी इस प्रतिभा का विकास पूर्ण रूप से देखने को मिलता है।

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

दिनकरजी ओज और तारुण्य के गायक कवि हैं। उनकी रचनाओं में ओज तथा वर्चस्व कूट-कूटकर भरा रहता है। 'बापू' शीर्षक कविता में उन्होंने राष्ट्रपिता की अर्चना प्रकृति की अनुपम देन सुरभित फूलों से न करके अंगारों से की है। कवि की यह कल्पना नितान्त नवीन और स्फूर्ति तथा बलिदान की परिचायक है। दिनकरजी की कविता भार-तीय आदर्श को अपने में पूर्णतया सँजोये हुए होती है, जो निश्चय ही एक विशेष महत्त्व रखती है।

श्री नरेन्द्र शर्मा

विरह और मिलन के मादक गीतों के प्रतिनिधि कवि श्री नरेन्द्र ने जिस तन्मयता एवं तल्लीनता से वे गीत लिखे हैं, उससे कहीं अधिक वह अपने नये प्रयोगों में सफल हुए हैं। उन्होंने अपनी नवीन कृतियों में भारत के भाग्य-विधाता गाँवों को भी बड़ी गम्भीरता से अपनाया है। इस पुस्तक की एक कविता में उन्होंने राष्ट्र-नायक पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। 'गाँव की धरती' में उन्होंने गाँव का चित्र बड़ी सरल-सरस शैली में किया है।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अश्कजी कवि होने से पहले कहानी-लेखक के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके हैं। वह पहले उर्दू में लिखते थे। पंजाब जैसे उर्दू-प्रधान प्रदेश में रहकर वह प्रेमचन्द जी के संसर्ग से हिन्दी-क्षेत्र में आये। इस प्रकार उनका हिन्दी में आना पंजाब ही नहीं प्रत्युत राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए भी सौभाग्य का कारण बना। वह कुशल कवि होने के साथ-साथ सफल कहानी-लेखक, उपन्यासकार तथा नाटककार भी हैं। 'बसन्त के तीन दृश्य' उनकी उत्तम रचना है।

श्री अज्ञेय

श्री अज्ञेयजी के पूर्वज गुरुदासपुर (पंजाब) के निवासी थे। उनके पिता डॉक्टर हीरानन्द शास्त्री बहुत दिन से उत्तरप्रदेश में ही कार्य कर रहे थे। श्री अज्ञेय जी जन्म से उत्तर प्रदेश के होते हुए भी प्रकृति से पंजाब के मध्यवर्ग की संस्कृति से पूर्णतया प्रभावित है। उनकी साहित्यिक प्रतिभा विविध रूप में निखरी है। कविताओं के अतिरिक्त आप उपन्यास, आलोचना तथा कहानी आदि भी लिखते हैं। पत्रकारिता का व्यसन भी आपको बहुत पुराना है। 'उड़ चल हारिल' आपकी प्रसिद्ध कविताओं में से है।

श्री शम्भुनाथ 'शेष'

शेषजी पंजाब में जन्म और दिल्ली में पले तथा बढ़े हैं। जीवन में पग-पग पर विषमताओं तथा कठिनाइयों का सामना करते रहने के कारण उनका कवि-मानस सांसारिक अनुभूतियों को गहरे में पैठकर व्यक्त करने में पूर्ण रूप से सजग एवं संवेदनशील रहा है। उनकी कविताओं में प्रकृति-प्रेम तथा जागरण के नये प्रयोग किये गए हैं। 'स्वागत, नये सूर्य का स्वागत' उनकी नई धारा की परिचायक कविता है। इसमें कवि ने भारत की स्वतन्त्रता का अभिनन्दन किया है।

श्री गोपालप्रसाद व्यास

श्री व्यास जी ने अपनी कविता में दैनिक जीवन की घटनाओं को लेकर हास्य, व्यंग्य तथा गम्भीर विनोद की जो त्रिवेणी प्रवाहित की है, वह सचमुच उनकी प्रतिभा की परिचायक है। उनकी कविताएँ हमारे जीवन का सजीव चित्र उपस्थित करने में पर्याप्त सफल रही हैं। प्रस्तुत कविता में उन्होंने नये ढंग से अपनी बात कही है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि निराला हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं। आप अपनी शैली और प्रतिभा के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा अद्भुत है। निरालाजी फक्कड़ प्रकृति के साधक और ओजस्वी साहित्यकार ही नहीं, प्रत्युत आदर्श मानव भी हैं। गरीबों और दरिद्रों के दुःख को जितना आप निकट से अनुभव करते हैं, उतना कदाचित् और कई नहीं करता। हिन्दी को ऐसे महाकवि पर गर्व है। 'जय' शीर्षक कविता में उन्होंने वीणा-पाणि सरस्वती की वन्दना नई शैली में की है।